'भारतीय पुस्तकमाला' के अन्तर्गत पाँचवीं किताब

गुजराती के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार की अमर कृति

स्नेह-यज्ञ

[भाग : २]

: लेखक :

रमणलाल वसंतलाल देसाई

बनारस

सरस्वती प्रेस

सरस्वती-प्रेस की प्रवृत्तियाँ

- 'हंस' मासिक — ६) वार्षिक
- 'कहानी' मासिक — ३) वार्षिक
- गल्प-संसार-माला — ४।=) ,,
- भारतीय पुस्तक-माला — ३) ,,
- हंस पुस्तकें — ३) ,,
- जाग्रत-महिला-साहित्य — ३।।) वार्षिक
- आज की किताब — ३) वार्षिक
- प्रगतिशील पुस्तकें — ३) ,,
- विविध प्रकाशन

: प्रधान कार्यालय :

— बनारस कैण्ट —

— शाखा —

खजूरी बाजार, इन्दौर : अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ।

— मुद्रक —

श्रीपतराय, सरस्वती-प्रेस, बनारस कैण्ट।

स्नेह-यज्ञ

[गुजराती का एक उच्चकोटि का सामाजिक उपन्यास]

लेखक

|

रमणलाल वसंतलाल देसाई

: अनुवादक :

श्यामू संन्यासी

सरस्वती प्रेस,

बनारस।

: क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत पन्द्रह सौ से अधिक
पृष्ठों का अमर साहित्य ; छः सुन्दर
एवं मोहक पुस्तकों के रूप में घर बैठे नीचे लिखे
वार्षिक मूल्य में मिल सकता है :

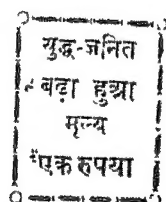
वार्षिक मूल्य

तीन रुपया

छः शिलिंग

बर्मा में

तीन रुपया आठ आना



द्वितीय संस्करण १००० : अप्रैल, १९४१ ।

२१

जे दुख हैये पाळी राख्युं,
जेने पीतां अमृत चाख्युं,
जे माटे सुख फेंकी नाख्युं,
तेने सहतां तलफुं कां ? *

—कलापी

वहाँ से किरीट एक डॉक्टर के पास गया। गाड़ी में बैठाकर वह डॉक्टर को घर ले आया। मंगला को यह अच्छा तो नहीं लगा परन्तु पुत्र डॉक्टर को बुला लाया था इसलिए लाचार होकर उसने उसे अपने शरीर की परीक्षा करने दी।

सर्वज्ञता और सर्वशक्तिमत्ता का ढोंग करके डॉक्टर ने मंगला की नाड़ी देखी, थर्मामीटर में बुखार देखा, बगल और पसलियों पर ठोंके लगाकर स्टेथेस्कोप द्वारा अन्तर्गत अवयवों की आवाज सुनी। डॉक्टर का गम्भीर चेहरा और भी गम्भीर हो गया। मंगला को अपने शरीर की कोई विशेष चिन्ता नहीं दिखाई दी, क्योंकि उसने डॉक्टर से

---

* जो दुख मैंने दिल में पाला,
जिसको पीते अमृत ढाला,
जिसके हित सुख फेंक निकाला,
उसको सहते तड़पूँ क्यों ?

अपनी बीमारी के बारे में कुछ नहीं पूछा, परन्तु नुस्खा लिखकर, बाहर आ डॉक्टर ने किरीट से कहा :

'तुम हिन्दू लोग कितने बेपरवाह हो !' डॉक्टर हिन्दू था।

हजार वर्ष से राज्य गँवा बैठे हुए हिन्दुओं को उलाहना सुनने की आदत पड़ गई है।

'क्यों डाक्टर साहब ?' किरीट ने पूछा।

'अभी तक तुमने अपनी मा का इलाज क्यों नहीं किया ?'

'साहब, उसे क्या बीमारी है ?'

'क्षय शुरू हो गया है।'

'अभी कल तक तो उसकी तबियत अच्छी थी।'

'यही तो तुम लोग भूल करते हो ! मैं दवा तो दूँगा ही; परन्तु अपनी मा को किसी सेनेटोरियम में ले जाओ, पंचगनी देवलाली, शिमला, धरमपुर...'

पच्चीस रुपए में एक लड़की को पढ़ाकर जीवनयापन करनेवाले विद्यार्थी के होश गुम हो गये। यदि वह स्वयं बिक जाता तो भी इतने पैसे नहीं मिलते कि उसकी मा को शिमला ले जाकर ठाट-बाटवाले विश्रामगृहों में रखा जा सके।

'देखो, यह दवाई रोज मेरे अस्पताल से लाना। ये चार दवाइयाँ बाजार से लानी पड़ेंगी। शायद बम्बई के सिवा अन्यत्र न मिलें। ये भी रोज देने की हैं। दूध, अण्डे, शहद और दो चम्मच ब्रांडी मिलाकर रोज साँझ सवेरे नियमित पिलाना। भोजन खासकर पौष्टिक होना चाहिये। मक्खन हुआ, परवल का साग हुआ, ये ठीक रहेंगे। नारंगी के बजाय मौसंबी ज्यादा अच्छी है...' इसके बाद किरीट को ध्यान न रहा कि डाक्टर ने क्या कहा है। उसे लगा गरीब आदमी का सारी उम्र तक पुसनेवाला भोजन डाक्टर एक ही दिन में खिला देना चाहता है।

वह डाक्टर के साथ गाड़ी में बैठा। रास्ते में उसने पूछा :

'डाक्टर साहब, यदि मैं मा को धरमपुर ले जाऊँ तो क्या अवश्य आराम हो जायगा ?'

'निश्चित नहीं कहा जा सकता। शायद वहाँ की आबहवा अनुकूल पड़े और अधिक दिन जी सके : परन्तु तुमने बहुत ही देर कर दी।'

मा की बीमारी के लिए अपने आप को अपराधी समझकर किरीट अतिशय दुःखी हो गया। अस्पताल से उसने दवा ली। दवाई की क़ीमत, गाड़ी-भाड़ा, डॉक्टर की फ़ीस, दो मौसंबी, पावभर मक्खन और आधा सेर शहद की क़ीमत में उसकी जेब में कभी उसे अभिमानित बनानेवाला दस रुपए का एक नोट ग़ायब हो गया। अभी तो अंडे, ब्राण्डी और बम्बई से दवा मँगाना बाकी था। अनुभवहीन होने से इस उधड़ेबुन में पड़ा हुआ किरीट, कि अण्डे तौलकर दिये जाते हैं या गिनकर, जाकर उनका भाव भी पूछ आया। अभी सेनेटोरियम में जाने के बारे में तो सोचना ही था।

घर जाकर उसने मा को दवा देनी शुरू की। आनाकानी करते हुए मा ने दवाई पी ली। चढ़े बुखार में भी मंगला ने भोजन तो बनाया ही था। रोज की अपेक्षा आज खाँसी अधिक थी। किरीट उस दिन कॉलेज नहीं गया। उसने दवा के लिए बम्बई पत्र लिखा। ब्राण्डी खरीदने के बारे में सुरेन्द्र से पूछना तै किया।

किरीट को इस बात की बड़ी चिन्ता हुई कि इस सेवाशुश्रूषा के लिए पैसे कहाँ से लाये जायँ। वह ग्रेजुएट होने की तैयारी में था। ग्रेजुएट होने के बाद उसे कहीं भी नौकरी मिल सकती थी, परन्तु तब उसके लिए अभी तीन महीने बाकी थे। उसने डरते-डरते पूछा :

'मा, घर में कुछ पैसे होंगे ?'

'चाहिये जितने। तू क्या करेगा ?'

'तेरे लिए दवा लानी है।'

'आज दवा की बड़ी-सी गँठड़ी बाँध लाया था न ?'

'वह तो...तुझे मक्खन खाना पड़ेगा, फल खाने पड़ेंगे, दूध पीना पड़ेगा, शहद खाना पड़ेगा।'

'क्यों बेटा, कहीं तेरी शादी-वादी तो नहीं हुई है ?'

'क्यों ?' चौंककर किरीट ने पूछा। भूली हुई मीनाक्षी उसकी आँखों आगे फिरने लगी।

'उसके सिवा मुझे यह सब खिलाने का कारण ? मैं तो समझी कि तू दावत दे रहा है।'

'मा, हँसी की बात नहीं है। सावधानी से तेरा इलाज करना पड़ेगा।' चिन्तित मुद्रा से किरीट ने कहा।

'मेरी दवा करनी हो तो पैसे नहीं हैं।'

'हर्ज नहीं। घर में न हों तो मैं उधार लाऊँगा।'

'कहाँ से ?' मा ने हँसकर पूछा।

'कहीं से भी। मुझे देनेवाले मिल जाएँगे।'

'कौन ? बतला तो सही ?'

'शायद सुरेन्द्र के पास से लूँ या मीनाक्षी के पिता से।'

'देख, दवाई के पागलपन में मत पड़! डाक्टर तो यों ही ऊटपटांग बकते हैं। आज की तरह बहाने के लिए पैसा नहीं होता। बीमारी का मिटाना न मिटाना ईश्वराधीन है, परन्तु यदि पैसों की आवश्यकता पड़े तो सुरेन्द्र के पिता के पास मैंने तेरे नाम से एक हजार रुपये रखे हैं।'

'हजार रुपए ?' किरीट चौंक पड़ा : 'इतने रुपए कहाँ से ?'

'तीन साल से हर महीने तेरे पच्चीस रुपए आते हैं। गिन, कितने हुए ?'

'तो मेरे पैसे तो तूने खर्च ही नहीं किये। क्यों है न ?'

'जरूरत पड़ने पर ही तो खर्च करती।'

'तो यह सब घर का खर्च कैसे चलाती रही ?'

'प्रभु को सबकी चिन्ता है। सबको निभाता है।' मंगला को खाँसी उठी।

किरीट चुप हो रहा। उसके हृदय में एक भयंकर शूल-सा चुभने लगा। ईश्वर ने नहीं परन्तु उसकी मा ने चिन्ता की थी; ईश्वर ने नहीं परन्तु मा ने उसे निभाया था; मा ने न तो खाया-पिया और न आराम किया। लोगों के घर पानी भरा, बर्तन मले और घर पर कूटना-पीसना किया। पुत्र को जरा भी खबर न होने दी। न केवल उसकी कमाई संचित की परन्तु अपनी मजूरी में से भी जो कुछ बच सका बचाया! बेटे के लिए हजार रुपये संचित करने में मा ने अपना लाख रुपये का शरीर घिस डाला। ऐसी मा का दर्द मिटाने यदि वह उसे 'कावड़' में बैठाकर धर्मपुर ले जाय तो भी कम है!

उसने सुप्रसिद्ध सेनेटोरियम के व्यवस्थापकों को जानकारी के लिए पत्र लिखे, और साँझ को जब सुरेन्द्र घर लौटा तो उसके पास गया। किरीट को देखकर सुरेन्द्र ने बेपर्वाही दिखलाई; परन्तु उस ओर ध्यान देने जैसी मनःस्थिति किरीट की न थी। उसने सुरेन्द्र से पूछा:

'सुरेन्द्र तेरे पिताजी के पास मेरी मा ने कुछ रुपए रखे हैं ?'

'यह तू पिताजी से ही पूछ ले।'

'मुझे स्वयं पूछना अच्छा न लगा।'

'क्यों, कहीं शादी तै की है क्या ?' सुरेन्द्र ने तिरस्कार से पूछा।

'हँसी करने का समय नहीं। मुझे पैसों की आवश्यकता आ पड़ी है।'

'मीनाक्षी को भेंट देनी होगी!'

क्षणभर के लिए किरीट ने सुरेन्द्र की ओर देखा। सुरेन्द्र का पत्र मीनाक्षी तक पहुँचा देने का आग्रह उसे याद आया। सुरेन्द्र और मीनाक्षी के पिता की आपस की मित्रता उसे याद आई। सुरेन्द्र के

कटाक्ष में छिपा हुआ आक्षेप आसानी से उसकी समझ में आ गया। उसे शंका हो आई कि पिछले चौबीस घण्टे में मीनाक्षी द्वारा उसपर डाले गये प्रभाव की बात कहीं सुरेन्द्र तक तो नहीं पहुँच गई है? किरीट को गुस्सा चढ़ आया। परन्तु उसे पीकर वह बोला :

'ऐसा भी हो सकता है। ऐसा करने में क्या मैं कुछ पाप करता हूँ?'

'पाप से भी अधिक कठोर कोई शब्द हो तो वह तुझ पर लागू करना चाहिये। उपकार का यह बदला? जिसकी तू रोटी खाता है उसी की लड़की को फुसलाने का प्रयत्न करता है? तेरा जैसा नमकहराम और कौन होगा?'

'मैं फुसलाने का प्रयत्न करता हूँ? सुरेन्द्र, तुझसे भूल हुई है।'

'मेरी भूल? मैं आँखों से प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। और यह देख, अपनी आँखें फोड़।' इतना कहकर सुरेन्द्र ने किरीट के हाथ में एक पत्र थमा दिया। किरीट ने मीनाक्षी के अक्षर पहिचाने। उसने कागज़ में लिखा हुआ जरा सा मजमून पढ़ा :

'आप अब मुझे पत्र न लिखें। हमारे संरक्षकों ने विचार किया होगा, परन्तु इस बारे में मैंने कुछ भी तै नहीं किया है। किरीटकान्त के प्रति मेरे मन में आदर और सद्‌भावना है। इसके सिवा और कोई भावना होगी तो उसे भी आप शीघ्र ही जान जाएँगे।'

पत्र पढ़कर किरीट ने सुरेन्द्र को लौटा दिया।

'क्यों? अब तो मेरी भूल नहीं है न?' सुरेन्द्र ने पूछा।

'दस बार तेरी भूल है। मीनाक्षी की भावनाओं के बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं है। और मैं उसे न तो फुसलाता हूँ और न फुसलाना ही चाहता हूँ।'

'झूठा!'

किरीट के हाथों में खून उछलने लगा। मारे क्रोध के उसकी आँखें लाल पड़ गईं।

'सुरेन्द्र, फिर कभी मुझे झूठा कहा तो याद रखना। और मीनाक्षी को तूने खरीद नहीं लिया है। मैं तुझे साफ कह देता हूँ। आज तक तो नहीं, पर आज तुझे सुनाकर कहता हूँ कि यदि मैं मीनाक्षी को नहीं चाहता रहा हूँगा तो अब चाहने लगूँगा। तुझसे जो हो सके करना।'

'ठीक है। तू अपने पैसे पिताजी के पास से ले जा। इतनी साफ बात कहकर अच्छा ही किया।' नम्रता और तिरस्कार का मिश्रण कर सुरेन्द्र ने कहा।

किरीट ने उसका जवाब नहीं दिया। वहाँ से वह वापिस मुड़ा। पीछे से उसने सुरेन्द्र को कहते हुए सुना :

'और मीनाक्षी के पिता से अपनी यह अभिलाषा प्रकट कर देना।'

सिर घुमाकर किरीट ने जवाब दिया :

'मुझे प्रकट करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। मुझे तेरा विश्वास है।'

वहाँ से किरीट सुरेन्द्र के पिता के पास गया। उनका चेहरा भी फूला हुआ था। किरीट ने नमस्कार कर, धीरे से अपनी मा द्वारा जमा किये हुए रुपए माँगे।

'हाँ। रुपए तेरे नाम पर हैं। मैं अभी दिलवा देता हूँ।' इतना कहकर उन्होंने मुनीम को बुलाया और किरीट को रुपए देने के लिए कहा।

थोड़ी देर बाद मुनीम रुपए ले आया।

'क्यों? सभी चाहिये न?'

'जी हाँ।'

'सब रुपए उड़ा मत देना। तेरी मा ने बहुत मुसीबतें सहकर इकट्ठे किये हैं।'

'इसमें से एक भी पाई मैं अपने लिए खर्च नहीं करूँगा।'

'तो फिर क्यों उठाता है?'

'मा को बड़ा तेज बुखार है। डाक्टर क्षय कहता है।'

'अच्छा! तो फिर ऐसे समय तू यह क्या झंझट ले बैठा?'

'कैसी झंझट? मुझे कुछ भी नहीं मालूम।'

'मिनाक्षी के पिता आज कितनी हाय-तोबा मचा गये! तुझे पसन्द करके हमने भेजा और तू बुरी चाल चले तो हमें कितना नीचा देखना पड़ेगा!'

'साहब, मुझे व्यर्थ दोष मत दीजिये। मैंने ऐसा कुछ नहीं किया जिससे मुझे या आपको लज्जित होना पड़े!'

'वह झूठ क्यों बोलने लगे? मीनाक्षी के साथ तेरा गाड़ी में घूमना क्या उचित है? फिर आज तू और मीनाक्षी एक-दूसरे का हाथ पकड़ते थे यह उसके पिता की आँखों से छिपा रह सकता है? गुञ्जाइश सोचे बिना ऐसे ऊधम हो सकते हैं?'

गुञ्जाइश? किरीट के सिर से पैर तक आग लग गई। वह ग़रीब था क्या इसीलिए उसकी गुञ्जाइश नहीं? यदि वह लखपती का बेटा होता? तो उसके छूने-पकड़ने का स्वागत किया जाता! लड़की के माता-पिता इसे प्रेम चेष्टा समझकर खुश हो गुपचुप हँसते! उसके स्थान पर सुरेन्द्र होता तो ऐसी शिकायत आती ही नहीं। क्यों उसकी गुञ्जाइश नहीं? कुछ सख्ती से उसने जवाब दिया :

'साहब, मेरे साथ अन्याय हो रहा है। मीनाक्षी की गाड़ी में मैं सिर्फ एक ही बार—कल ही बैठा था। वह भी मेरी इच्छा के विरुद्ध और दूसरी बात जो आपने कही वह मुझे और मीनाक्षी को बिलकुल ग़लत ढंग से रखती है! परन्तु आप गुंजाइश का ताना मारते हैं तो मुझे कहना पड़ता है कि ग़रीब का बेटा होने से मैं धनिकों के पुत्रों की अपेक्षा ज़रा भी हीन नहीं हूँ।'

किरीट की अन्तिम दलील उनके गले उतर ही नहीं सकती थी।

ग़रीब और अमीर के लड़के में अन्तर नहीं समझनेवाले इस लहरी युवक पर वह हँस दिये और दोनो का अन्तर समझाकर किरीट के भले के लिए अन्त में यह सीख कह सुनाई :

बराबरी से कीजिये व्याह, वैर अरु प्रीति।

किरीट हजार रुपए ले तो आया ; परन्तु इस रक़म ने उसकी चिन्ता बढ़ा दी। यह रक़म सँभालकर कहाँ रखी जाय ! जैसे-तैसे कर उसने इन रुपयों को छिपाकर रख दिया। उसी दिन उसने मीनाक्षी के पिता को पत्र लिखा कि अपनी मा की बीमारी के कारण वह मीनाक्षी को पढ़ाने का काम कर न सकेगा—उसकी मा सचमुच बीमार थी, और उसे पूरा-पूरा विश्राम देने की डाक्टर ने सलाह दी थी। भोजन बनाने का काम तक उससे लेना असंभव था, इसलिए किरीट का कुछ समय इसमें लग जाता था ! फिर परीक्षा का समय बहुत निकट आ जाने से पढ़ने का समय भी कम नहीं किया जा सकता था।

इन दो कारणों से उसने पढ़ाना बन्द कर दिया, परन्तु अन्दर से उसके घायल अभिमानी हृदय ने तै किया कि सब लोगों की इस मान्यता को असत्य किया जाय कि मीनाक्षी का प्रेम जीतने में उसने, उसे पढ़ाते समय मिलनेवाले अवसर से लाभ उठाया है। मीनाक्षी यदि उसे सचमुच चाहती होगी तो बिना पढ़ाये भी चाहेगी।

मीनाक्षी के पिता को कुछ समय से किरीट के विरुद्ध पत्र मिलने लगे थे। उनमें चेतावनी दी गई थी कि किरीट मीनाक्षी को फुसलाकर बुरे रास्ते ले जायगा। यद्यपि मीनाक्षी के पिता को किरीट से कुछ भी शिकायत नहीं थी फिर भी उन पत्रों को पढ़कर वह किरीट और मीनाक्षी पर नजर रखने लगे।

उस दिन उन्हें एक पत्र मिला। उसमें यह यह अपराध लगाया गया था कि मीनाक्षी किरीट के साथ गाड़ी में बैठकर घूमती है। पिता ने गाड़ीवान को डाँटकर पूछा। गाड़ीवान ने कहा :

'मालिक, कल बहिन ने मास्टर साहब को रास्ते पर से गाड़ी में बैठाया और उनके घर पहुँचाया। इसके सिवा कभी भी दोनो साथ-साथ गाड़ी में नहीं बैठे।'

गाड़ीवान कुछ सत्यवादी हरिश्चन्द्र नहीं होते। उन्हें यह स्वाभाविक संशय हुआ कि एक दिन की बात स्वीकार कर उसने दूसरे दिनों की बात छिपाई है। किरीट और मीनाक्षी पर आज उन्होंने और अधिक ध्यान दिया। उन्होंने छिपकर यह देखा कि किरीट के पास कुर्सी रखे मीनाक्षी उससे बिलकुल छूकर बैठी है। और ज्यों ही मीनाक्षी ने किरीट की तबियत के हाल जानने के लिए उसके हाथ पर हाथ रखा त्योंही उन्हें विश्वास हो गया कि पत्रों में आनेवाली सूचना बिलकुल सही है। उन्होंने यह अपनी आँखों देखा कि किरीट ने मीनाक्षी पर मोहिनी डाली है।

वह मीनाक्षी के स्वभाव को जानते थे। सभी मीनाक्षी की इच्छा का खयाल रखते थे। इस विचार में पड़े हुए पिता ने कि उसे इस रास्ते से हटाकर माता-पिता द्वारा पसन्द किये गये समान श्रेणी के पति को स्वीकार करने के लिए क्या उपाय किया जाय, उस समय किसी से कुछ न कहा; परन्तु सुरेन्द्र के पिता से उन्होंने सब हकीकत कही। शिक्षक और शिष्या को विलग करने का यही सबसे अच्छा ढंग था। उनके सूचना करने से पहले ही किरीट का पत्र आ गया और दोनो के मिलने की संभावना कम हो गई।

मीनाक्षी यह सब न समझे, इतनी बच्ची न थी।

२२

अन्धार मृत्यु मधु तो कडवो उजास,
ने स्वप्न ना जीवित तो नक्की स्वप्न मृत्यु;
छे रात्रिनो दिवस के दिननी निशा छे ?
शुं हुं हईश बस एकज स्वल्प स्वप्नुं ? *

—कलापी

कालेज की डिबेटिंग सोसाइटी में वाद-विवाद होनेवाला था। मीनाक्षी को उपस्थित रहने के लिए खास तौर से निमन्त्रण दिया गया था। सैकड़ों विद्यार्थी इकट्ठा हुए थे। विद्यार्थी अकारण ही उधमी होते हैं। किसी के खड़े होने पर हुर्रे करते हैं; कोई बैठ जाय तो भी 'हुर्रे' करते हैं वक्ता जोशीला भाषण दे तो भी तालियाँ पीटते हैं, और यदि बोलते-बोलते कोई रो पड़े तो भी तालियाँ पीटते हैं, कोई हँसाना चाहे तो कदापि नहीं हँसेंगे। कोई करुण रस-पूर्ण वातावरण खड़ा करना चाहे तो जान बूझकर कहकहों से उस वातावरण को छिन्न-भिन्न कर देंगे। विद्यार्थी धमकी को तो पहचानता ही नहीं। यदि उसे दया-

---

* काली मृत्यु मधु तो कटु है प्रकाश,
और स्वप्न जीवित नहीं तो निश्चय स्वप्न मृत्यु ;
है रात्रि का दिन या दिन की निशा है,
क्या मैं हूँगा बस एक ही स्वल्प सपना ?

दिखलानी हो तो भी पूरी तरह से मज़ाक उड़ा लेने पर ही दिखलाता है। जीवन के ग्रहमंडल में मौज और स्वच्छन्दता से घूमनेवाला यह धूमकेतु दूसरों को हँसा और रुलाकर स्वयं तो हँसता ही रहता है—चमकता ही रहता है। जो विद्यार्थी नहीं उसे इस आनन्द का पता नहीं लग सकता। उसकी मौज, मस्ती और ऊधम अमर हों।

विद्यार्थियों ने किसी वक्ता को बैठा दिया, किसी को बोलने ही नहीं दिया और जिसे बोलने दिया उसकी खूब मजाक उड़ाई। दो-तीन अच्छे वक्ताओं पर विद्यार्थी-मंडल ने थोड़ी कृपा भी की। बहुत शोरगुल बढ़ने पर सभापति ने सुरेन्द्र से बोलने का आग्रह किया। सुरेन्द्र ने मना कर दिया, परन्तु सभापति के आग्रह के साथ विद्यार्थियों ने भी आग्रह किया। विद्यार्थियों के आग्रह के आगे किसी का बस नहीं चलता। ननुनच करता हुआ सुरेन्द्र अपूर्व स्वाभिमान से खड़ा हुआ। उसके खड़े होते ही सबने अपना ऊधम छोड़ दिया। इस आत्मविश्वास से कि सब विद्यार्थी उसे सुनेंगे ही उसने बोलना शुरू किया। पन्द्रह मिनट तक उसकी अस्खलित वाग्धारा बहती रही और विद्यार्थियों के पारे जैसे चंचल मन स्थिर हो गये। उसका भाषण समाप्त हुआ और मुग्ध विद्यार्थियों के प्रचण्ड हर्षनाद के बीच शान से नमस्कार कर वह अपनी जगह बैठ गया।

मीनाक्षी जानती थी कि सुरेन्द्र एक असाधारण विद्यार्थी है। किरीट भी कई बार उसकी प्रशंसा करता था। मीनाक्षी के माता-पिता ने थोड़े दिनों से सुरेन्द्र ही की चर्चा चलाकर सारे घर को उसके नाम से भर दिया था। सुरेन्द्र का दिखावा और स्वभाव बिलकुल ऐसा न था कि उससे अरुचि पैदा हो। किरीट के प्रति अत्यधिक आकर्षण होते हुए भी मीनाक्षी सुरेन्द्र को देखती और कभी-कभी याद भी करती थी। कभी-कभी अनायास ही सुरेन्द्र और किरीट की तुलना भी उसके मन में हो जाया करती थी। कई बार दो सौन्दर्यों के बीच चुनाव करने का

काम कठिन हो जाता है। ताजमहल और आबू के मन्दिर में से कौन श्रेष्ठ है? गुलाब का रंग बढ़कर है या चम्पे का? पारिजात का परिमल ऊँचा है या जुही का? इन प्रश्नों का उत्तर देना कठिन है। किरीट और सुरेन्द्र की तुलना करने में मीनाक्षी को ऐसी ही उलझन होती थी, परन्तु अन्त में किरीट के नित्य समागम ने मीनाक्षी को उसकी पक्षपातिनी बना दिया। उस पक्षपात ने उससे सुरेन्द्र को अरुचिकर उत्तर दिलवाया और किरीट की ओर अति वेग से उसे प्रेरित किया।

पन्द्रह-बीस दिन हुए वह किरीट से मिल न सकी थी। उसे शंका होने लगी कि किरीट का बतलाया हुआ कारण सच था या नहीं? वह एकदम समझ गई कि उसका किरीट के प्रति जो भाव है उसे अनुभवी माता-पिता ने ताड़ लिया है। ऐसा सतत प्रयत्न होता रहता था कि सुरेन्द्र के साथ उसके विवाह की घर में होनेवाली चर्चा खास उसके सुनने में आती रहे, इसलिए मीनाक्षी की समझ में आ गया कि किरीट का आना एकदम बन्द कर देने में माता-पिता का यही खास उद्देश्य है। बात ही बात में उसने सबके कान में डाल दिया कि जब तक वह ग्रेजुएट नहीं हो जाती उसके विवाह की चर्चा कोई न करे। सब की यह धारणा थी कि किरीट घर में से दूर हो गया है इसलिए मीनाक्षी का उसके प्रति पागलपन भी मिट जायगा।

कालेज में या कालेज से आते-जाते किरीट मीनाक्षी को बहुत कम दीख पड़ता था। सुरेन्द्र जाने क्यों उसे बहुत बार दिखाई देता था। उसमें कमी ढूँढ़ने का मीनाक्षी का प्रयत्न असफल होता था। किरीट की अपेक्षा सफाई, चालाकी, रोब सब कुछ सुरेन्द्र में अधिक थे और तो भी किरीट के प्रति उसमें अति कोमल भावनाएँ सतत रहा करती थीं।

कविता में प्रेम विशुद्ध एकमार्गी पागलपन गिना जाता होगा। विचार-जगत् में प्रेम की कल्पना प्रथम दर्शन में उत्पन्न होकर जीवन-

पर्यन्त प्रज्वलित रहनेवाली अग्नि से की जाती होगी। यह सिद्धान्त कि किसी के हृदय में यदि किसी के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाता है तो वह सिवा अपने प्रिय पात्र के और किसी का चिन्तन ही नहीं करता, प्रेम की महत्ता बढ़ाना होगा ; परन्तु व्यवहार में प्रेम को सदा अन्ध शक्ति नहीं कहा जा सकता। उसमें तुलना की गुञ्जाइश है, चौकसी की गुञ्जाइश है ; इसलिए यदि मीनाक्षी किरीट और सुरेन्द्र की आपस में तुलना करती थी तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

डिबेटिंग सोसाइटी की सभाओं में वह शायद ही कभी जाती थी, परन्तु इस बार उसका मन जाने को हो आया। सुरेन्द्र बोलेगा और उसका वाक्चातुर्य सुनने को मिलेगा ऐसा सहज लोभ भी उसे हो आया। किरीट ने सुरेन्द्र की व्याख्यान-शैली की प्रशंसा न की थी ? वह सभा में गई। उसने सुरेन्द्र का भाषण सुना। विद्यार्थियों का उसके प्रति सम्मान भी प्रत्यक्ष देखा। किरीट का कथन उसे सच जँचा। उसे विश्वास हो गया कि सुरेन्द्र साधारण युवक तो है नहीं। उसे स्पष्ट लगा कि जिस युवती का विवाह सुरेन्द्र के साथ होगा उसे उससे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं रहेगा। कभी माता-पिता के दुराग्रह से उसे ही सुरेन्द्र के साथ विवाह करना पड़ गया तो !

एकदम मीनाक्षी ने अपनी इस विचार-शृंखला को तोड़ दिया। बरजोरी उसने किरीट की याद की। सभा समाप्त होने के बाद उसने गाड़ीवान को किरीट के मकान की ओर चलने के लिए कहा।

'बहिन, बाबू साहब ने मुझे उस ओर जाने से मना किया है।'

'क्यों ?'

'उस दिन मास्टर साहब के घर गाड़ी ले जाने से बाबूजी ने मुझे बहुत ही धमकाया।'

'चल, चल। तुझे कोई कुछ कहे तो मुझसे कहना।'

'बाबू साहब अवश्य नाराज होंगे।'

'होने दे।'

'मेरी रोजी छिन जायेगी बहिन।'

'जा अपनी गाड़ी लेजा। मैं पैदल ही वहाँ तक चली जाऊँगी। गाड़ी रोक, मुझे उतर जाने दे।

मीनाक्षी का क्रोध और उसकी पैदल चलकर जाने की तैयारी देखकर गाड़ीवाला घबराया। कुछ भी हो वह आखिर नौकर था और मीनाक्षी मालिक की लड़की थी। उसे पैदल कैसे चलने दिया जा सकता था!

'नहीं-नहीं, बहिन, मैं ऐसा नहीं कहता। आप हुकुम दें वहाँ ले चलूँ; परन्तु इस ओर को साहब ने मना...'

'तुझे डरने की जरूरत नहीं। मैं पिताजी से कह दूँगी कि तेरे मना करने पर भी मैं तुझे उस ओर ले गई थी। और कुछ?'

'जैसा आपका हुक्म!'

गाड़ीवान ने किरीट के मकान की ओर गाड़ी घुमाई। सुरेन्द्र भी वहीं रहता था। उसकी गाड़ी भी उसी ओर आई। सुरेन्द्र के दृष्टि-पथ से बचने के लिए मीनाक्षी ने अपनी निगाह घुमा ली। फिर भी जब उसकी गाड़ी पास से निकली तो उसकी निगाह उस ओर उठ ही गई। रौब से बैठे हुए शानदार और हँस-मुख सुरेन्द्र की दृष्टि भी उस पर पड़ी। मीनाक्षी ने महसूस किया कि सुरेन्द्र अतिशय स्वाभिमानी युवक है। उसका स्वत्व, उसका स्वाभिमान जरा भी कम नहीं होता। वह सभी को दबाने, जीतने का प्रयत्न करता है। किरीट की सरलता उसमें नहीं।

किरीट के घर के आगे गाड़ी आ खड़ी हुई। यह सोचकर कि किसी की गाड़ी निकल रही होगी किरीट ने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। मीनाक्षी की यह धारणा थी कि गाड़ी देखते ही किरीट बाहर निकल आयेगा। कुछ क्षण रुककर उसने गाड़ीवान से कहा :

'जा, अन्दर तलाश कर।'

बैठे ही बैठे गाड़ीवान ने आवाज़ दी :

'मास्टर साब, मास्टर साब!'

किरीट ने बैठे-बैठे ही बाहर देखा। उसने समझा कि मीनाक्षी का गाड़ीवान कोई सन्देशा लाया होगा।

'क्यों, क्या है?, किरीट ने पूछा।

'बहिन आई हैं!'

किरीट बाहर आया।

'उसके बाद तो तुम बिलकुल दीखे ही नहीं। मैं समाचार पूछने आई हूँ।' गाड़ी में बैठे ही बैठे मीनाक्षी ने कहा।

'आओ, आओ! किरीट ने आधी प्रसन्नता और अर्ध व्यग्रता भरे स्वर में कहा। मीनाक्षी धीरे से उतरी। किरीट को उस समय ऐसा लगा मानो सुनहरी रुपहरी परिधान से विभूषित उषा मानव देह धारण कर उतर रही हो। किरीट यह तै न कर सका कि इस स्वर्गीय सौन्दर्य को अपनी अँधेरी कोठरी में कहाँ बैठाए? कुर्सी एक भी न थी। एक ओर चारपाई पर मंगला पड़ी थी। चारपाई के नीचे दवाई की शीशियाँ रखी थीं। कुछ फल रखे थे। पास ही एक चटाई बिछी थी। दूसरी ओर एक पुरानी शतरंजी बिछी थी और उस पर कुछ पुस्तकें पड़ी थीं यहाँ बैठकर किरीट लिखता-पढ़ता था।

भीतर आकर मीनाक्षी चारपाई के पास चटाई पर बैठ गई। उसी समय मंगला को बहुत जोर से खाँसी उठी। किरीट मा के पास चारपाई पर बैठा। उसने धीरे से उठाकर मा को बैठाया, अपने कन्धे पर उसका सिर रखा और हाथ से पीठ सहलाने लगा।

शरीर से घृणा करने और उसका मोह छुड़ाने के लिए कितने ही दार्शनिक विद्वान् और भक्त उसका जुगुप्सित वर्णन करते हैं। इस बात को तो कोई अस्वीकार नहीं करेगा कि इस कथन से शरीर की

रचना ऐसी है जो इस पर गर्व करनेवाले को चौंका दे। तिस पर शरीर यदि रोगग्रस्त हुआ तो इसकी दरिद्रता—विभत्सता प्रत्यक्ष हो उठती है। साधारण बीमारी भी शरीर और उसके सौन्दर्य की नश्वरता को प्रमाणित करती है। क्षय जैसी असाध्य व्याधि तो प्रतिक्षण मनुष्य के हृदय में मानव देह पर घृणा उपजाती है। मानव-हृदय में स्नेह न होता, दया न होती तो रोगी की शुश्रूषा हो ही नहीं सकती थी। संसार में सम्बन्ध, स्नेह और दया की एक खास कसौटी है; परन्तु रोगी की शुश्रूषा में होनेवाली कसौटी से ही सम्बन्ध, स्नेह और दया का सच्चा स्वरूप प्रकट होता है।

मीनाक्षी का किरीट के प्रति स्नेह था, कुछ उसकी मा के प्रति नहीं। किरीट की मा को उसने पहली ही बार देखा। चमकदार तथा चंचल, परन्तु गड्ढे में धँसी हुई डरावनी आँखें; मुर्झाये हुए गालों पर अप्राकृतिक लाली; सूखे हुए हाथ और अकारण लम्बी दीखती अँगुलियाँ; बूँद-बूँद कर निचोड़े जाते जीवन-रस के बचे खुचे अंश को संचित रखने के लिए प्रयत्न करता हुआ अति दुर्बल शरीर: मंगला का ऐसा स्वरूप देखकर मीनाक्षी के हृदय में अकथ्य भय उत्पन्न हो गया। उसने रोगियों की शुश्रूषा पर निबन्ध लिखे थे; आकस्मिक और तात्कालिक शुश्रूषा के लिए First aid (प्रारम्भिक चिकित्सा की) परीक्षा भी पास की थी; अस्पताल में बीमारों को दूर से देखकर उनके प्रति दया भी प्रदर्शित की थी; परन्तु इस तरह मौत के पंजे में छट-पटाते हुए रोगी को प्रत्यक्ष देखने का उसे कोई अवसर नहीं पड़ा था। धनिकों की बीमारी का भार वहन करने के लिए भी किराया दिया जाता है। परिचारक, नौकर, डाक्टर आदि कीमत लेकर उस भार को उठा लेते हैं, इसलिए डाक्टरों की जेबें भरनेवाले धनिकों को रोगियों के पीछे होनेवाले जागरण, बीमार को रिझाने के कष्ट-साध्य प्रयत्न, शारीरिक पीड़ा को कम करनेवाली परिचर्या और परिचारक को जुगुप्सा

पैदा करनेवाली शुश्रूषा की परम्परा आदि बातों का खयाल बहुत ही कम हो पाता है। मीनाक्षी ने कभी ऐसा रोग नहीं देखा था। उसका उछलता, उमड़ता जीवन इस शेष-प्राय जीवन को देखकर काँप उठा।

खाँसी थमने के बाद दस मिनट तक साँस भर आने से मंगला बेटे के कन्धे पर पड़ी रही। जब कुछ शान्ति हुई तो स्वयं ही तकिये पर सिर रखकर लेट गई और बड़ी कठिनाई से आँख तथा हाथ के इशारों से स्वागत किया। किरीट ने मीनाक्षी से पूछा :

'तुम क्यों आई ? मुझे चिट्ठी लिखी होती तो मैं ही मिल जाता।'

मृत्यु जैसी भयंकर शान्ति का अनुभव करती हुई भयभीत मीनाक्षी ने किरीट के शब्द सुने और तब कहीं उसे मालूम हुआ कि इस जगह जीवन का अस्तित्व भी है।

'बहुत दिन हुए और तुम कॉलेज में भी नहीं दीखे, इसलिए आज ऐसी मन में आई कि मैं स्वयं ही पता लगा आऊँ।'

'इस समय किधर से ?'

'डिबेटिंग सोसाइटी की सभा में गई थी।'

'सुरेन्द्र तो बोला ही होगा।'

'हाँ।'

'कितना जोरदार भाषण देता है ?'

'अच्छा बोलते हैं।'

'मैं कहता न था ?'

मीनाक्षी ने फिर से मन में सुरेन्द्र और किरीट की तुलना की। मंगला ने बड़ी धीमी आवाज में किरीट से पूछा :

'यह कौन ? मीनाक्षी बहिन तो नहीं हैं ?'

'हाँ।' किरीट ने जवाब दिया।

मंगला ने आँखें मूँद दोनो हाथ इस तरह ऊँचे करके जोड़े

मानो ईश्वर से कोई प्रार्थना करती हो। उसके बाद चटाई पर बैठी हुई मीनाक्षी से उसने कहा :

'बहिन, ईश्वर तुम्हें सुखी रखे। मेरे इस किरीट का संसार में कोई नहीं है।'

'मा, तू बिलकुल मत बोल। बोलने से तू थक जायगी और फिर खाँसी आने लगेगी।' किरीट ने कहा। किसी प्रकार की निराधारिता दिखलाना उसका मन मारने जैसा था।

मीनाक्षी बहुत-सी बातें करने के लिए आई थी, परन्तु बीमारी के वातावरण में वह कुछ बोल न सकी। कमरे में स्वाभाविक दृष्टि डालने पर उसे प्रफुल्लित बनाने जैसी कोई सामग्री नहीं दिखाई दी। सामान के अभाव में दीखनेवाली एक अस्पष्ट स्वच्छता और उस स्वच्छता को ढाँकते हुए प्रकाश के अभाव ने उसके रक्त की गति को धीमी कर दिया।

'कुछ दे तो सही!' मा ने याद दिलाई। इस बीसवीं शताब्दी में चा, काफी या कोको का बहिष्कार करनेवाले इस शिक्षित परन्तु विचित्र युवक को आतिथ्य-सत्कार करने की भी याद न रही। वह मीनाक्षी की ओर देख रहा था। मा के लिए डाक्टर के परामर्शानुसार 'कोको' रखा था और काम शीघ्रता से करने के लिए किरीट ने एक नया स्टोव खरीदा था। थोड़ा हटकर किरीट ने स्टोव सुलगाया।

'मैं कुछ नहीं पियूँगी।' मीनाक्षी ने अपने आतिथ्य-सत्कार की तैयारियाँ होते देखकर कहा।

'इसमें क्या है!' धीरे से मंगला ने कहा।

गृहस्थी के काम-काज में, किरीट का नौसिखियापन साफ दिखाई पड़ गया। मीनाक्षी को हँसी आ गई। किरीट को उठाकर स्वयं 'कोको' बनाने की उसे इच्छा हो आई। उठकर किरीट के पास आ वह बोली :

'तुम हटो। मैं बना दूँ।'

'मुझे बनना नहीं आता यह दिखाई दे गया न?'

'हाँ!'

'मेरी मा ने आज तक मुझे कुछ भी काम नहीं करने दिया।'

'बहुत बीमार हैं, बेचारी!'

'सेनेटोरियम में ले जाने जैसी भी उसकी हालत नहीं है। मैंने सब तैयारियाँ कीं, परन्तु डाक्टर ने मना कर दिया।'

किरीट चीनी मिट्टी की दो प्यालियाँ ले आया। एक प्याली की डण्डी टूट गई थी और दूसरी प्याली और रकाबी एक मेल के न थे। चीनी मिट्टी के सुन्दर बर्तनों से परिचित मीनाक्षी को यदि यह सब दारिद्र्यपूर्ण लगा तो इसमें उसका कोई दोष नहीं।

मीनाक्षी ने प्यालियाँ भरीं। स्टोव की गुरगुराहट अभी तक चालू थी। किरीट ने पूछा :

'मीनाक्षी यह स्थान बहुत ही दारिद्र्यपूर्ण मालूम होता है?'

मीनाक्षी भी इसी सोच-विचार में पड़ी थी, परन्तु कई बार हमें दूसरों के प्रति अपने अभिप्रायों को छिपा रखना पड़ता है। उसने कहा :

'नहीं, नहीं! मुझे तो तुम्हारी मा की चिन्ता हो रही है।'

'यह बचने की नहीं। डाक्टर ने आशा छोड़ दी है।'

'क्यों?'

'बीमारी बहुत तेजी से बढ़ रही। Galloping है।'

मीनाक्षी काँप उठी। भयप्रद बीमारों के पास कई आदमी बैठ ही नहीं सकते। उसने शीघ्रता से 'कोको' पी लिया और जाने के लिए उठी। मंगला को आश्वासन दिया :

'अब आप बहुत शीघ्र अच्छी हो जायँगी।'

मंगला हँसी। रोगी की हँसी भी डरावनी लगती है। मंगला

जानती थी कि उसका रोग मिटने का नहीं। उसने जवाब दिया :

'न भी होऊँ तो मुझे अब दुःख नहीं। किरीट को पानी का लोटा भर कर कोई देनेवाला है, यह देखकर मरूँगी तो, सन्तोष है।'

किरीट मीनाक्षी को बिदा देने के लिए बाहर चबूतरे पर आया। गाड़ी ज़रा दूर खड़ी थी। चबूतरे के खुली हवा में मीनाक्षी कुछ प्रफुल्लित हुई। उसने कहा :

'तुम बिलकुल न मिलो यह तो ठीक नहीं।'

'मैं अपनी मा की परिचर्या में इतना व्यस्त रहता हूँ कि पूरा पढ़ ही नहीं सकता।'

'कॉलेज तो जाते हो न ?'

'हाँ ; उपस्थिति लिखाने भर को।'

'दो मिनट वहीं दिख जाया करो तो तुम्हें देखने का सन्तोष हो।'

'मीनाक्षी, तुम इतने पर ही रुक जाओ। हम दोनो का मिलना कइयों को अच्छा नहीं लगता।'

'भले न लगे। मैं क्यों नहीं मिलूँ ?'

'मीनाक्षी !'

'क्या ?'

'एक बात कहूँ ?'

'हाँ, कहो न ?'

'तुम्हें बुरा लगा तो ?'

'मैं विश्वास दिलाती हूँ कि मुझे बुरा नहीं लगेगा।'

'आज जो कहूँगा उसे फिर कभी दुहराऊँगा नहीं।'

'मैं सुनना चाहूँ तो भी न कहोगे ?' हँसकर मीनाक्षी ने पूछा।

'यह सुनकर शायद तुम मुझसे मिलना ही बन्द कर दो।'

'आज तक मैंने मिलना बन्द किया है ?'

'नहीं।'

'और तुमसे मिलने तो मैं ही आई हूँ न ?'

'तो मैं कहने की हिम्मत करूँ ?'

'हिम्मत हो तो हिम्मत करो।'

'मीनाक्षी यह तो तुमने देख ही लिया कि मैं बहुत ग़रीब हूँ।'

'उससे क्या हुआ ?'

'मैं गरीब तो हूँ; परन्तु अपना सर्वस्व—अपने प्राण—भी तुम्हारे चरणों पर समर्पित करूँगा। मेरे जीवन में तुमसे अधिक और कुछ न होगा।'

किरीट उसकी ओर देखकर बोला। मीनाक्षी सुनती रही। उसने दो-एक बार दृष्टि नीची की। उसके चेहरे का रंग, लाल रंग की पिचकारी छूटी हो, ऐसा हो आया। एकाएक उसने हाथ आगे बढ़ाया और किरीट से हाथ मिलाकर हँसते हुए कहा :

'नमस्ते ; किरीटकान्त !'

आधुनिक ढंग से नमस्कार कर मीनाक्षी नीचे उतर गाड़ी में जा बैठी। मंगला को खाँसी उठी। वह घर के भीतर दौड़ा, परन्तु गाड़ी के घोड़े की टापें जब तक सुन पड़ती रहीं वह सुनता रहा।

अपनी हवेली की एक छोटी-सी खिड़की में खड़ा सुरेन्द्र हाथ मिलाने का यह दृश्य देख रहा था।

२३

नहि नहि पण अेवी विश्वनी आर्द्रवृत्ति,
गडमथल अहीं सौ जीवनार्थे मचेली ;
प्रणय, रति, दया, के स्नेह ने आतृ भाव,
अर र ! नहि सहु अे स्वार्थना शुं विभाग ? *

—कलापी

मीनाक्षी को उस दिन घर लौटने में देर हो गई। उसे किसी ने कुछ कहा नहीं। सब यह जानते थे कि वह डिबेटिंग सोसाइटी में गई थी, परन्तु दूसरे दिन उसने अपने पिता को गाड़ीवाले को धमकाते हुए सुना। वह झटपट पिता के पास गई और कहने लगी :

'गाड़ीवान का कुछ भी दोष नहीं। मैं ही इसे ले गई थी।'

'बहिन ने पैदल चलकर जाने को कहा तो मेरी कुछ चली नहीं।' गाड़ीवान ने कहा।

'ठीक, जा।' कहकर उन्होंने गाड़ीवान को जाने दिया। मीनाक्षी को बैठाकर वह उससे बोले :

---

* न-न करते भी ऐसी जग की करुण वृत्ति,
सब ओर जीवन-हित संघर्ष मचा है ;
प्रणय, रति, दया, या स्नेह औ' आतृ-भाव,
अरर ! नहीं सब ये स्वार्थ के क्या विभाग ?

'मीनाक्षी, तू किरीट के घर क्यों गई थी ?'

'क्यों न जाती ? बहुत दिनों से उनकी कोई खबर नहीं मिली थी इसलिए हो आई।'

'ऐसे आदमी के यहाँ स्वयं तेरा जाना लोगों में कितना नीचा दीखता है ?'

'इसमें लोगों को क्या ?'

'तू और किरीट क्या बराबरी के हो ? वह तो अपना नौकर है।'

'ऐसा क्यों कहते हैं ? वह तो मेरे शिक्षक हैं।'

'ठीक है। ऐसे तो हम कई शिक्षक रखेंगे। उनके प्रति मान रखना अच्छा है, परन्तु हमें अपनी पदवी और प्रतिष्ठा भूलनी नहीं चाहिये।'

'मैं उनके समाचार पूछने जाऊँ तो क्या इसमें हमारी प्रतिष्ठा कम हो जाती है ?'

'तुझे नहीं लगता ? लोगों के यहाँ बर्तन माँजकर पेट भरनेवाली स्त्री के यहाँ तेरा जाना कैसा लगेगा ?

'किरीटकान्त की मा के बारे में कह रहे हैं ?'

'हाँ।'

मीनाक्षी थोड़ी संकुचित हो गई। गरीबों के लिए अतिशय सम-वेदना रखनेवाला अमीर भी गरीबों के साथ बैठते हुए शर्माता है। प्रदर्शन करना आवश्यक हो तो वे गरीबों के साथ मिलने-जुलने का ढोंग भले ही करें। फिर भी उन्हें इसमें संकोच तो होता ही है और ऐसा भान बना रहता है कि मानो उन्होंने कोई महान् कार्य कर डाला है। गरीब की झोंपड़ी में पाँव रखते ही राजकुमारी का राजसी वैभव बहुत जोर से ऊपर उठ आता है। मीनाक्षी को यह बात खटकी। वह बर्तन मलनेवाली के घर गई थी ! किरीट पानी भरनेवाली का बेटा था !

'इसमें क्या हो गया ? यह तो जैसी जिसकी स्थिति !' ग़रीबी का बचाव करना पढ़े हुए अमीरों को आता है। मीनाक्षी ने ग़रीबी देखी नहीं थी, परन्तु ग़रीब से घृणा नहीं करने के बारे में उसने बहुत कुछ पढ़ा था, इसलिए उसने ऐसा उत्तर दिया।

'सो तो ठीक ; परन्तु यह तू नहीं जानती है कि उसके घर में तुझसे प्रवेश नहीं किया जा सकता ?'

'मैं नहीं जानती।'

'यह तू जानती है कि किरीट की मा को क्षय हो गया है ?'

'यह तो मैं जानती थी कि वह बीमार हैं। कल ही मुझे पता चला कि उन्हें क्षय हो गया है।'

'यह अपने डॉक्टर से पूछ लेना कि क्षय कैसा भयंकर रोग है ?'

डॉक्टर से पूछने की आवश्यकता नहीं थी। इस भयंकर रोग की की छाप मीनाक्षी के हृदय से मिटी नहीं थी।

'परन्तु इससे देखने जाने में क्या हर्ज है ?' मीनाक्षी ने डरते-डरते पूछा।

'अरे रे ! तू समझती ही नहीं। इसकी जैसी दूसरी कोई छूत की बीमारी नहीं। साँस से भी इसके कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं। युवकों को यह खास कर हो जाता है। वहाँ कुछ खाया-पिया तो नहीं था ?'

'कोको पिया था !'

'ओ पागली ? क्षयवाले घर में घुसा नहीं जाता, तो फिर वहाँ की कोई वस्तु मुँह में डाली ही कैसे जा सकती है ? खाने-पीने की चीजें, ओढ़ना-बिछौना सब कुछ तो त्याज्य समझा जाता है। साबुन से हाथ धोये बिना उसकी परिचर्या करनेवाला भी कहीं छू नहीं सकता। तूने यह क्या किया ?'

किरीट का साबुन से हाथ धोकर कोको बनाना मीनाक्षी को याद

नहीं आ रहा था। मा के बिस्तरे पर से उठकर उसने तत्काल स्टोव सुलगाया था। फिर वह स्वयं भी बीमार के बिस्तरे के पास ही बैठी थी। इस तरह उसने महारोग से भरे हुए घर में जाने का दुस्साहस किया था। क्या गये बिना नहीं चल सकता था? वह किरीट के लिए गई थी। और किरीट ने क्या कहा था? वह बात उसे क्यों इतनी अच्छी लगी थी? सारी रात उसे किरीट के सपने आते रहे। परन्तु .. उसे कुछ दिन रुक जाना चाहिये था। किरीट कहीं भाग नहीं जाता था। उसके घर में से रोग या रोगी के अदृश्य होने पर ही उसे जाना चाहिये था। ऐसे विचार एक के बाद एक मीनाक्षी को आने लगे। पिता ने देखा कि रोग के डर ने पुत्री पर अच्छा प्रभाव डाला है।

'आगे से वहाँ मत जाना। क्षय के कीटाणु स्वस्थ फेफड़ों की ही तलाश में रहते हैं।'

मीनाक्षी सचमुच डर गई। क्षण-भर के लिए उसे ऐसा लगा कि कहीं प्याले, चारपाई, अरे किरीट के हाथ में से ही क्षय के कीटाणु निकलकर उसके फेफड़े में तो नहीं घुस गये हों!

हर एक जमाने के अनुकूल डरानेवाले भूतों की सृष्टि उस-उस जमाने में होती रहती है। भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी जैसी भयानक कल्पनाएँ अधूरे ज्ञानवाले हमारे पूर्वजों के मस्तिष्क की उपज समझकर हम उन पर हँस देते हैं, परन्तु हँसते समय हम यह भूल जाते हैं कि विज्ञान के बहाने हम भूत-प्रेत से भी अधिक भयावने भूतों की सृष्टि करते जाते हैं। इस वैज्ञानिक युग में, तान्त्रिक ओझाओं की याद दिलाती, प्रयोगशालाओं के धूपदीप में से कीटाणु नाम का एक ऐसा विकराल राक्षस बना है कि उसके आगे भूत-प्रेत की कल्पना भी म्लान पड़ जाती है। यह कीटाणु रूपी राक्षस पढ़े-लिखों को पग-पग पर डराया करता है। इसके डर के मारे आदमी न जी भरकर खाता है, न पीता है; न सोता है; इसके डर से आदमी एक दूसरे के स्पर्श को तो

सह ही नहीं सकता है, पर साथ ही वह अपनी प्रियतमा का चुम्बन करते भी रुक जाता है !

अमीरों को मौत से बहुत ही डर लगता है। उनकी ऐसी राय होती है कि मृत्यु को उनके सामने आना ही नहीं चाहिये। मरने के लिए ग़रीब कहाँ कम हैं कि मौत धनिकों को ढूँढ़े? धनिकों का ऐसा विश्वास हो जाने से कि मृत्यु उस विज्ञान-सृजित भूत—कीटाणु-द्वारा सभी को अपने पंजे में पकड़ली है, वे इस कीटाणु को अपने से दूर रखने के लिए ऐसे ऊँचे पर्वतों पर अपना निवास करते हैं जहाँ ग़रीब पहुँच न सकें, अपने मकानों के चारों ओर चौकी-पहरे बैठा देते हैं, कीटाणु-नाशक दवाइयों और उपचारों से सदा लैस रहते हैं, और ग़रीबों की बस्ती में ही रोग के कीटाणु मर्यादित रहें इसलिए उन्हें स्वास्थ्य के साधनों से वंचित रखते हैं, परन्तु इतने सब प्रयत्न करने के बाद भी वे भूल जाते हैं कि, संसार को अनेकों भौगोलिक विभागों में बाँटने के बाद भी, वह तो एक और अखण्ड ही रहनेवाला है। गोरे और काले, ऊँच और नीच स्पृश्य और अस्पृश्य जैसे भूल भरे भेदभाव करनेवाले कूटनीतिज्ञ को यह पता नहीं रहता कि संसार के किसी एक अंगुल बराबर कोने में उड़नेवाले मच्छर और मक्खी पृथ्वी पर महामारी फैला, समस्त मानव-जाति को नष्ट करने की सामर्थ्य रखते हैं! रोग और रोगी से भागनेवाले स्वार्थी को यह समझना आवश्यक है कि जहाँ तक दुनिया में एक भी रोगी रहेगा, ऊँचे से ऊँचे वैद्यकीय साधनों से लैस रहने पर भी, कोई अमीर रोग के भय से मुक्त नहीं हो सकता।

धीरे-धीरे किरीट की याद से होनेवाला आनन्द रोग की स्मृति से म्लान पड़ने लगा। मीनाक्षी के हृदय में ताँडव होने लगा। किरीट के स्पर्श की स्मृति में रोमांचित होते ही दूसरे ही क्षण उसको किरीट की रोग-ग्रस्त माता के कीटाणु उसे अपने शरीर में प्रवेश करते दिखलाई पड़ते। डर ही डर में वह सुरेन्द्र की याद करती। सुरेन्द्र के कपड़े

स्वच्छ थे ; उसका दिखावा स्वच्छ था ; उसका घर भी जो उसने देखा था स्वच्छ था। उसके घर में रोग का निवास नहीं था। हवा और प्रकाश की विपुलता के कारण वह जीवन से भरा-पूरा लगता था। सुरेन्द्र की वाक्शैली कैसी अनोखी थी ! उसमें कुछ स्वमान—अभिमान—की छाप दिखाई देती थी, परन्तु यह तो प्रत्येक शक्तिशाली पुरुष का लक्षण है।

इस तरह किरीट और सुरेन्द्र दोनो के बीच उसका हृदय डगमगाने लगा।

थोड़े समय बाद सुरेन्द्र और किरीट के परीक्षा में सम्मिलित होने का समय आया। किरीट और सुरेन्द्र का आपसी संघर्ष कम हो गया था। मा की बीमारी से किरीट का मन इतना भारी हो गया था कि उसे अपना क्रोध तीक्ष्ण करने का अवकाश ही न मिलता था। एक दिन सुरेन्द्र किरीट की कोठरी में आया। कभी-कभी आते-जाते वह कोठरी के बाहर खड़ा रहकर मंगला की हालत पूछ लेता था।

'आ, सुरेन्द्र !' किरीट ने कहा।

'मैं तुझे पूछने आया हूँ। परीक्षा के लिए कुछ प्रबन्ध किया है ?'

'इस बार मैं परीक्षा में बैठूँ या नहीं, कुछ भी तै नहीं है।'

किरीट की मा ने आँख खोली और धीरे-धीरे पूछा :

'किरीट, बैठता क्यों नहीं है ?'

'तुझे इस दशा में छोड़कर मैं परीक्षा देने जाऊँगा ? अगले साल देखी जायगी।'

'नहीं। इस तरह एक वर्ष बिगाड़ने के लिए नहीं।'

'ठीक। देखूँगा।'

'कब है ?'

'चार दिन बाद।'

'सुरेन्द्र भाई, इसे ले जाना।' मा ने कहा।

'हाँ-हाँ, इसीलिए तो आया हूँ। तुम्हारे पास किसी को रखने का प्रबन्ध करेंगे।' सुरेन्द्र ने कहा।

'मा को इस स्थिति में मैं छोड़ ही नहीं सकता। किसी के सुपुर्द कैसे किया जाय?' मा न समझ सके इसलिए किरीट ने अंग्रेजी में कहा।

'तेरी भूल है। एक सप्ताह के लिए किसी परिचारिका—नर्स—को रख ले। तेरी अपेक्षा वह अधिक अच्छी तरह से देख-भाल करेगी।' सुरेन्द्र ने जवाब दिया।

'परन्तु डाक्टर कहता है कि इसका अब बिलकुल भरोसा नहीं। जाने कब क्या हो जाय।

'रोज तार से यहाँ की खबर मँगवाया करेंगे। तुझे ऐसा कुछ मालूम हो तो तू लौट आना।'

परीक्षा में बैठने का लोभ सहज बढ़ा। सुरेन्द्र और मा का आग्रह इतना अधिक था कि उसकी अवहेलना करना कठिन था। मा ने हँसते-हँसते कहा :

'मेरे मरने का डर लगता है?'

'नहीं नहीं। तुझे तो आराम होता जा रहा है। चार दिन से बुखार भी कम है।' आशा और निराशा में झूलता हुआ यह रोग रोगी को और उसके स्नेहियों को आशा-निराशा का अति दुःखप्रद अनुभव कराता है, परन्तु इस रोगिणी को अपने भविष्य का पता लग चुका था।

'तो फिर क्या? दो घड़ी कोई पड़ोसी बैठेगा। और देख तेरे आये बिना मैं मरने की नहीं। हाँ! निश्चिन्त होकर परीक्षा दे आ।'

'अगर ऐसा है तो मैं वापिस लौटूँगा ही नहीं। तू जीती रहेगी यही बहुत है।' हँसकर किरीट ने कहा। बीमार के बिस्तरे के आस-पास हँसी कई बार फूट निकलती है।

पुत्र को खबर ही न हुई कि मृत्युशय्या पर पड़ी हुई मा ने बेटे के लिए परीक्षा में जाने का प्रबन्ध कर रखा था। एक वृद्धा पड़ोसिन जमनाबाई ने इतने समय के लिए मंगला के पास रहना और उसकी परिचर्या करना स्वीकार कर लिया था। अमीर पड़ोसी हो तो परस्पर एक दूसरे को पहिचानते ही नहीं और प्रायः काम भी नहीं आते, परन्तु ये तो दोनो गरीब पड़ोसी थे। एक-दूसरे के काम आ जाते थे। क्षय के कीटाणुओं के बारे में समूल अज्ञानी होने से ऐसे रोगी की परिचर्या कर प्राण संकट में डालने का उन्हें डर न था। ऐसा डर होने पर भी वे अपने प्राणों को आपत्ति के समय में पड़ौसी की सेवा से पीछे हटने जैसा कीमती नहीं समझते थे।

अन्त में किरीट ने सुरेन्द्र के साथ परीक्षा देने जाना स्वीकार कर लिया। ठहरने का अन्य कोई प्रबन्ध न होने से हर बार की तरह उसे इस बार भी सुरेन्द्र के साथ ही ठहरने का प्रबन्ध स्वीकार करना पड़ा। जाते-जाते देख-भाल करनेवाली पड़ोसिन को उसने अनेकों सूचनाएँ दीं, आठ दिन के लिए आवश्यक पैसे भी दिये। डाक्टर को हर रोज देखने की फीस पेशगी ही दे दी और पड़ोस में रहनेवाले एक लड़के के हाथों नित्य-प्रति दवा ला देने का प्रबन्ध किया। अत्यन्त मानसिक वेदना के साथ उसने घर छोड़ा। उसे परीक्षा पर, अपनी शिक्षा पर और अपने स्वार्थ पर बहुत ही घृणा हुई, परन्तु सब कुछ प्रबन्ध कर लेने के बाद अब नहीं जाना भी उसे ठीक नहीं मालूम दिया। डाक्टर ने भी थोड़ी हिम्मत बँधाई थी—क्योंकि एक सप्ताह की पेशगी फीस देनेवाले ग्राहक के घर के रोगी को एक सप्ताह पूर्व नहीं मारने की इच्छा डाक्टर को तो होगी ही।

परीक्षा देते समय भी किरीट का चित्त व्यग्र रहता था। घड़ी-घड़ी उसे मा की याद आती थी। उसे कौन बैठायेगा? कौन पानी पिला-येगा? उसे फल बराबर देगा या नहीं? उसे अकेली ही तो नहीं डाल

रखा हो ! ऐसी ऐसी हज़ारों चिन्ताएँ उसे हुआ करती थीं। परीक्षकों और विद्यार्थियों को तो विश्वास ही था कि किरीट निश्चय ही पहला आयेगा, परन्तु उसे स्वयं ऐसा लगता था कि उससे प्रश्नों का उत्तर बहुत अच्छी तरह नहीं लिखा जाता है।

परीक्षा के अन्तिम दिन अन्तिम प्रश्न-पत्र बाँटा गया और विद्यार्थी उसे एक ही साँस में पढ़ गये। किरीट ने लिखना प्रारम्भ किया ही था कि प्रधान निरीक्षक (Head superviser) ने उसके पास आकर कहा :

'किरीटकान्त, तुम्हारा तार है।' वह किरीट को पहिचानता था। तार का नाम सुनते ही किरोट चौंका। उसके हृदय में धमाका हुआ कि तार में मा की हालत अधिक बिगड़ने का ही समाचार होगा। उसने काँपते हुए हाथों से तार का लिफाफा फाड़ा। उसमें सुरेन्द्र के एक मुनीम ने लिखा था :

'Your mother sinking. Start immediately'

'तुम्हारी मा की हालत बहुत खराब है। तत्काल आओ।'

किरीट ने आवश्यकता पड़ने पर तार करने की सूचना सुरेन्द्र के मुनीम को दी थी।

किरीट ने उत्तर-पुस्तक कोरी की कोरी निरीक्षक को दी। निरीक्षक ने साश्चर्य पूछा :

'अरे ! तुम कोरी उत्तर-पुस्तक दोगे ?'

'कोई चारा नहीं। मुझे तत्काल जाना पड़ेगा।'

'परन्तु यह विषय तो पूरा हो जाने दो।'

'जी नहीं, मेरी गाड़ी आधे घण्टे बाद रवाना हो जायगी। उसके पहले ही मुझे पहुँच जाना चाहिये।'

'मैं बहुत ही दुःखी हूँ। इससे तुम्हारे परीक्षा फल पर बुरा असर होगा। सभी आशा रखते हैं कि तुम प्रथम आओगे। यह सारा विषय

छोड़ दोगे तो शायद तुम उत्तीर्ण भी न हो सको।'

'मैं क्या करूँ, साहब? अनुत्तीर्ण होने पर अगले साल आऊँगा, परन्तु मेरी मा मुझे फिर मिलने की नहीं।'

सुरेन्द्र उससे कुछ दूर पर था। वह कान लगाकर यह बात सुन रहा था। निरीक्षक की स्वीकृति लेकर किरीट ने सुरेन्द्र के साथ जल्दी-जल्दी बातें कीं :

'सुरेन्द्र, मेरा थोड़ा सामान है, तू लेता आयेगा?'

'तू कहाँ जाता है?' जानते हुए भी उसने पूछा।

'इस गाडी से. तार आया है।' किरीट ने उसे तार दिया।

'मुझे बहुत ही दुःख है, परन्तु तेरे गये बिना चल नहीं सकता। मैं सब सामान लेता आऊँगा।'

किरीट वहाँ से स्टेशन भागा। चलती गाड़ी में दौड़कर सवार हो गया। उसके पास टिकिट भी न था। टिकिट के पैसे भी न थे; रुपए तो डेरे पर छोड़ आया था। वहाँ जाने जितना समय भी न था, इसलिए साहसकर, फाटक पर खड़े रौबदार, पर भले टिकिट-कलेक्टर को जल्दी से बचा, गाड़ी में चढ़ गया। दुर्भाग्य से उसी डिब्बे में टिकिट-चेकर उपस्थित था। गाड़ी के पूरे वेग से चलते ही उसने सभी का टिकिट जाँचना शुरू किया। किरीट से टिकिट माँगने पर उसने कहा;

'मेरे पास न तो टिकिट है और न पैसे ही।'

किरीट का दिखावा भीख मारने जैसा नहीं होने से चेकर ने अपने खुजलाते हुए हाथों को रोक रखा, परन्तु एक शिकार हाथ लगा हो इस तरह से उसने घुड़कना शुरू किया। किरीट ने अपना नाम-पता बतला दिया और आवश्यक दण्ड भी भेज देने की बात कही, तथापि रेलवे कंपनियाँ किसी को उधार गाड़ी में मुसाफिरी नहीं करने देतीं और न किसी साहूकारी को स्वीकार करती हैं। किरीट ने तार दिखलाकर संक्षेप में अपनी परिस्थिति समझाई, परन्तु इस तरह प्रत्येक यात्री के

निजी कारणों पर ध्यान देने लगे तो कम्पनी को शीघ्र ही दिवाला निकालना पड़े। फिर यह बात टिकिट चेकर की समझ में नहीं आई कि परीक्षा देने जानेवाला जेब में किराया चुकाने जितनी रकम भी न रखेगा। कहा-सुनी में दूसरा स्टेशन आते ही किरीट को गाड़ी से उतारने की धमकी दी गई।

उसी डिब्बे में एक संभ्रान्त व्यक्ति अपनी पत्नी और पुत्री के साथ बैठे हुए थे। उन्हें किरीट के कथन और दिखावे में सत्यता लगी और उसकी मुसीबत में सहायता करने की इच्छा हो आई। उन्होंने चेकर से किराये की रकम पूछी और दंड सहित रकम जमा कर दी। चेकर ने दण्ड की रकम जेब के हवाले की और किराये की रसीद देकर शीघ्रता से अदृश्य हो गया।

बिना किसी परिचय के इस तरह की सहायता करनेवाले गृहस्थ को देखकर किरीट को आश्चर्य हुआ। उसने उनका आभार माना और पता ठिकाना पूछ लिया।

'देखो भाई, आदमी हैं। किसी वक्त अनजान मुसीबत में गिर जाना पड़ता है। यदि ऐसे समय काम न आयें तो कब आयेंगे?' उदार गृहस्थ ने उत्तर दिया। अच्छी कमाई करके थोड़े दिन के लिए वह अपने वतन जा रहे थे। पैसों की सहूलियत रहने पर उदारता का प्रदर्शन करने की इच्छा सब किसी को हो आती है। दूसरा बड़ा स्टेशन आते ही उन्होंने सबके लिए चाय मँगवाई। किरीट के सामने भी प्याला रखा गया।

'मैं चाय नहीं पीता। क्षमा कीजिये।'

'बढ़िया ब्राह्मणिया चाय है।' चाय बेचनेवाले ने एक प्याले की बिक्री कम होने की संभावना देखकर अपने चीज को स्वयं ही प्रमाणपत्र दिया। ब्राह्मण-बनिये के भुलाये जाने और भुलाने योग्य भेद-भाव किरीट को जरा भी पर्वाह नहीं थी। उसने कहा :

'मैं चाय पीता ही नहीं।'

'तुम क्यों नहीं पीते?' उन सज्जन की लड़की ने जो किरीट के पास बैठी हुई थी, पूछा। लड़की की चंचलता ध्यान खींचनेवाली थी।

'मुझे अच्छी नहीं लगती।'

'मुझे तो बहुत अच्छी लगती है!' लड़की ने कहा।

कई लोगों को दूसरों के बालक अच्छे नहीं लगते। कइयों का मन चाहे जिस बालक से बोलने को हुआ करता है। कई बार पहली प्रकार के आदमियों को, अपने परिचितों को अच्छा लगे इसलिए उनके बालकों से बोलना पड़ता है। अपने बालकों का दूसरों के द्वारा बतियाया और खेलाया जाना—सभी को अच्छा लगता है। किरीट को मनुष्य-जाति के प्रति प्रेम नहीं था। बालकों की ओर उसे विशेष आकर्षण नहीं होता था। किसी को कभी झूठ-मूठ के लिए प्रसन्न करने की उसे आवश्यकता नहीं थी। फिर भी इस लड़की की चंचल आँखें और मीठी वाणी ने उसे आकर्षित किया। उसने बात आगे बढ़ाई:

'तुम दिन में कितनी बार चाय पीती हो?'

'तीन बार।'

'यह तो अधिक कही जाती है! चाय तो नुक़सान करती है।'

'क्यों पिताजी! चाय अच्छी नहीं होती?'

'नहीं। अधिक पीने से नुकसान करती है।'

'तो तुम क्यों पीते हो!' बालकों के आगे झूठा दंभ कर सर्वगुण संपन्नता का ढोंग करनेवाले माता-पिता को कई बार बालक उलझन में डाल देते हैं।

'यह लड़की तो भाई बहुत ही बातूनी है!' हँसकर वह सज्जन बोले। छोटे बालकों की गालियाँ बकने की शक्ति पर फिदा होनेवाले कई माता-पिता दुनिया में पड़े हैं; वहाँ इस तरह की चंचलता से यदि मा-बाप खुश हों तो क्या आश्चर्य है!

'तुम कुछ पढ़ती भी हो?' किरीट ने उस लड़की से पूछा। नये युग में यह प्रश्न सर्वव्यापी हो गया है। इससे वार्तालाप करने की एक सहूलियत बढ़ गई है।

'हाँ, गुजराती पाँचवीं।' उसने जवाब दिया।

'तुम अंग्रेजी क्यों नहीं पढ़तीं?'

'अंग्रेजी पढ़ाने पर तो यह आसमान के तारे तोड़ने लगेगी।' लड़की की मा ने भी लड़की की प्रशंसा में भाग लिया।

'तुम्हारा नाम क्या है?' किरीट ने पूछा।

'चमेली।'

२४

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो
लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।

—भगवद्गीता

धड़कते हुए हृदय से किरीट घर के चबूतरे पर चढ़ा। रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्त होने आया था। द्वार बन्द थे, परन्तु दरार में से दीये का म्लान प्रकाश दिखाई दिया। बहुत धीरे से उसने दर्वाज़ा थपथपाया, भीतर से कोई जवाब नहीं मिला। अधीरतापूर्वक उसने दर्वाजे को धक्का दिया। अन्दर से उसकी मा की आवाज़ आई:

'कौन है?'

'मा, मैं हूँ।'

मंगला के पास सोई हुई जमना ने उठकर दर्वाज़ा खोला।

'तू कहाँ से?' उसकी मा ने पूछा।

'क्यों? परीक्षा समाप्त हो गई?' किरीट ने तार की बात नहीं की।

'तू तो कल आनेवाला था न?'

'अधिक मत बोल, थक जायेगी। ज़रा जल्दी चल पड़ा। तू कैसी है?'

'अच्छी हूँ।'

छः-सात दिन में मंगला अधिक सूख गई थी, परन्तु तार कर

परीक्षा में से उसे बुलाने जैसी हालत किरीट को नहीं लगी। ऐसा भी नहीं मालूम पड़ा कि तार करने की खबर मंगला को हो। उसने जमना से पूछा :

'मा घबरा तो नहीं गई थी न ?'

'नहीं। सबेरे डाक्टर को कुछ अधिक कमजोरी मालूम पड़ी थी। सुरेन्द्र के पिता भी उस समय थे। तुम्हें पत्र तो रोज मिलते ही रहे होंगे। उनका मुनीम रोज आकर देख जाता था। तुम्हें हालचाल लिखता था न ?'

'बड़े भले लोग हैं !' मंगला ने कहा।

किरीट को एकाएक सन्देह हुआ कि कहीं सुरेन्द्र ने जान-बूझकर तो इस तरह का तार करने के लिए अपने मुनीम से न कहा हो ? सारी रात उसे नींद नहीं आई। उसे इस बात का अत्यन्त खेद हो रहा था कि एक प्रश्न-पत्र छूट जाने से उसका क्रम नीचा हो जायगा। सुबह उसने डाक्टर से पूछा :

'मा अब कैसी है ?'

'कभी भी उनके हृदय की गति रुक सकती है।'

'बचने की जरा भी आशा नहीं ?'

'देखो, आशा तो हम कभी छोड़ते ही नहीं—कहो कि छोड़ने नहीं देते, परन्तु हमें प्रत्येक परिणाम के लिए तैयार तो रहना ही चाहिये।'

'कल हालत खराब थी ?'

'हाँ हृदय की गति धीमी पड़ती जा रही थी, परन्तु बाद में ठीक हो गई।'

'आपने तार देकर मुझे बुलवाने के लिए कहा था ?'

'नहीं, नहीं। मैंने तो केवल यह कहा था कि किसी आत्मीय का समीप रहना आवश्यक है।'

किरीट को विश्वास हो गया कि सुरेन्द्र के मुनीम ने जान-बूझकर पहले ही से परामर्श करके सुरेन्द्र की इच्छानुसार, तार देकर उसकी परीक्षा छुड़वाई है। यह बात किसी से कही नहीं जा सकती थी। सुरेन्द्र के साथ लड़ने की उसने तैयारी कर रखी, परन्तु परीक्षा समाप्त होने के बाद सुरेन्द्र जब उसका सामान लेकर आया तो उसे ऐसे अनुमान पर झगड़ा करना उचित नहीं जँचा।

एक दिन मंगला ने किरीट को पास बुलाकर पूछा :

'मीनाक्षी बहिन फिर नहीं आई?' मंगला अब बहुत ही धीमी आवाज़ में बोल सकती थी। अधिकांश तो वह आँखें मूँदकर पड़ी रहती थी।

'नहीं।'

'आएँगी तो सही न?'

'हाँ।'

'देख, मैं एक बात कहती हूँ। मीना...' मंगला आगे बोल न सकी। उसकी आँखें स्थिर हो गईं। उठी हुई पलकें वैसी की वैसी ही रह गईं। ओंठ सहज मुड़कर स्थिर हो गये। किरीट समीप न होता तो इस निःशब्द चेष्टा को देख ही न पाता। वज्र-हृदय को भी कँपा देनेवाली इस क्रिया को देखकर वह घबरा गया।

'मा, मा क्या होता है?'

पुत्र का प्रश्न मा सुन नहीं रही थी। प्राण-दीपक बुझ गया था।

'मा, पानी दूँ?' किरीट ने अपना चेहरा अधिक निकट लाकर पूछा। उस शरीर को अब कुछ भी नहीं चाहिये था। शरीर माता का ही था परन्तु मा चल दी थी। किरीट चिल्लाकर समस्त मानवजाति को जगाता तब भी उसकी मा का शरीर हिलनेवाला नहीं था।

किरीट ने आवाज़ देकर जमना को बुलाया। पड़ोसिन बेचारी

भागी आई। मंगला के शरीर की ओर देखकर उसने एकदम चटाई खींचकर पानी छिड़का और उसके पाँव पकड़कर किरीट से कहने लगी :

'उठा, उठा !'

चेतनाहीन-से किरीट ने मा का सिर पकड़ा और उसे नीचे उतारा।

'गोविन्द ! गोविन्द ! नारायण ! वासुदेव !' पड़ोसिन बोलने लगी।

'मा को क्या हुआ ?' किरीट ने पूछा !

'तेरी मा तो गई ! रामजी के चरणों में जा बैठी।' बुढ़िया के गले में रुदन था। उसकी आँखों में आँसू थे। दौड़कर उसने एक दीया जलाया ; आस-पास की दो-तीन औरतों को आवाज़ दी ; अपने घर जाकर एक प्याले में गंगाजल ले आई, मंगला के मृत शरीर पर छींटते-छींटते वह बोलने लगी :

'गोविन्द ! गोविन्द !'

चार-पाँच स्त्रियाँ आ पहुँचीं। फिर कुछ पुरुष भी आ पहुँचे। धीरे-धीरे आदमी जमा होने लगे। शून्य-से किरीट ने जो कुछ हो रहा था होने दिया। उसकी आँखों में आँसू भी न आये। लोग उसकी मा को श्मशान ले गये। किरीट भी साथ घसीटा गया। ऐसे समय सब कोई इकट्ठे हो जाते हैं। रोग या रोग के कीटाणुओं का किसी को डर नहीं रहता। आ नहीं सकते हैं मात्र धनिक। गरीबों की महत्त्वहीन मृत्यु की अपेक्षा धनिकों का समय कहीं कीमती होता है !

स्वप्न-जगत् में विचरण करनेवाले की तरह सच-झूठ के भ्रम में चक्कर खाता हुआ किरीट सबके साथ घर लौटा। उस समय रात हो गई थी। सब लोगों के चले जाने पर वह घर में गया। नित्य की भाँति इस समय भी उसकी जीभ पर प्रश्न आया :

'मा, कैसी है ?'

परन्तु उसके बोलने से पहले ही जमना ने कहा :

'भैया ! किरीट !'

'किरीट चौंका । मा कहाँ ? वह विचारने लगा । विचारते ही उसके हृदय को टुकड़े-टुकड़े करता हुआ एक भयंकर शूल उठा । उसकी छाती पर सारे ब्रह्माण्ड का बोझ आ पड़ा ।

जमना ने किरीट को समझाया, आश्वासन दिया, मा की सद्गति के बारे में विश्वास दिलाया और सिर पर आ पड़ी विपत्ति सहने की हिम्मत बँधाई । अपनी कोठरी में चलकर भोजन करने का आग्रह किया । किरीट को आश्वासन की बहुत आवश्यकता नहीं थी । सबने देखा कि अभी तक किरीट की आँखों से आँसू की एक भी बूँद नहीं गिरी थी । सारा मुहल्ला सिर पर उठाने की बात तो जुदी किरीट ने एक सिसकी भी नहीं भरी थी । कई लोगों का तो यहाँ तक मत हो गया था कि अंग्रेजी पढ़े-लिखे—आजकल के छोकरों को वेदना बहुत कम होती है । फिर भी जमना ने तो आश्वासन दिया ही । खाने का बहुत आग्रह करने पर भी किरीट ने इन्कार कर दिया । अपने घर चलकर सोने के लिए भी कहा । किरीट ने उत्तर दिया कि उसे अपने ही घर में सोना अच्छा लगेगा ।

मंगला के गुणों का बखान करती हुई जमना बगल की अपनी कोठरी में गई । कई दिनों के जागरण के कारण किरीट की आँखें जल रही थीं और शरीर दर्द कर रहा था । कोठरी का फर्श पानी छिड़के जाने के कारण गीला हो गया था । उसने चारपाई बिछाई और दूर पड़ा हुआ एक तकिया खटिया पर डाला । वह खटिया पर बैठा और जैसे ही सोने लगा उसे यह ख़याल आया कि इससे उसकी सोई हुई मा को असुविधा होगी । वह एकदम उठ बैठा और खटिया से नीचे उतर पड़ा, परन्तु खटिया तो खाली थी । उसे घर और संसार सूना लगा । अब उसका कोई न था । उसका

हृदय धड़कने लगा; गला रुँध गया। खटिया पर उसने हाथ डाले, हाथ पर सिर डाल दिया और उसके कण्ठ से अस्फुट आवाज़ निकल पड़ी :

'ओ मा! तू कहाँ गई!'

उसका दबा हुआ हृदय बह निकला; उसकी आँखों में आँसू उमड़ आये, वह सिसकने लगा। वह अपने आवेग को रोक न सका। थोड़ी देर बाद उसे लगा कि जैसे कोई उसे बुला रहा है।

'किरीट!'

किरीट ने एकदम सिर उठाया, आँखें पोंछ डालीं और अपना रुदन दबा दिया।

'किरीट!' सुरेन्द्र के पिता खड़े उसे बुला रहे थे। उसने कोई उत्तर नहीं दिया, मात्र सामने ही देखता रहा। उन्होंने कहा :

'किरीट! हमारे यहाँ चल! अभी यहाँ रहना ठीक नहीं।'

'जी नहीं! मैं तो यहीं पड़ा रहूँगा।'

'इतना पढ़ा-लिखा होकर भी तू नहीं समझता? इस घर में फिनाइल छिड़कना पड़ेगा, सफेदी करानी पड़ेगी।'

'क्यों?'

'जहाँ क्षय के कीटाणु हों वहाँ रहना नहीं चाहिये।'

किरीट को इस तरह कीटाणुओं से डरनेवाले शुभचिन्तक के प्रति घृणा हो आई।

'साहब, मैं ही क्षय का कीटाणु हूँ। मुझे घर ले जाने में कुछ सार नहीं।'

'तेरे लिए दूसरी कोठरी खुलवा दूँगा।'

'नहीं। आज तो मैं यहीं रहूँगा।'

वह भी दिलासा देकर चले गये। रात को वह कोठरी के अन्दर सो न सका; उसे मा की प्रतिध्वनियाँ सुनाई पड़ती रहीं। वह चबूतरे

पर आ सोया। सारी रात उसे सपने आते रहे। उसकी मा ने उससे पूछा :

'किरीट, तुझे मीनाक्षी पसन्द आती है या नहीं ?'

'कहाँ है ?' किरीट ने पूछा।

'वह आ रही है।' मंगला ने अँगुली से मीनाक्षी को बतलाया।

किरीट ने गाड़ी में से उतरती हुई मीनाक्षी को देखा और उसकी आँख खुल गई। खाली सवेरा हो रहा था ; मीनाक्षी न थी। वह घर के भीतर भागा। खटिया खाली पड़ी थी।

'मा कहाँ ?'

उसे याद हो आई कि मा को तो कल ही जला दिया है।

२५

सुकायां ना आंसु हजी पण अरे रे नयन थी ;
तजाई ना प्रीति मरण समये ये हृदय थी ;
तमारुं व्हालानुं नव हजु गयुं चिन्तन अहो !
न बूझायो व्हाला ! प्रणय भडको आ हृदयनो ! *

—कलापी

मनुष्य की निष्ठुरता अद्‌भुत है। मृतकों को वह भूल जाता है ; भूल न सके तो वह मृतकों की मृत्यु को सहन करने लग जाता है। वह और करही क्या सकता है ? मृत्यु जीवन की एक महान करुण कहानी है, परन्तु विवश होकर मृत्यु को सह लेना उससे भी कहीं अधिक करुणाजनक है। किरीट को परीक्षा याद आने लगी।

परीक्षा के परिणाम की प्रतीक्षा करते-करते उसका परिणाम भी आ गया। किरीट को विश्वास नहीं था कि वह उत्तीर्ण हो जायगा। एक प्रश्न-पत्र तो यों ही छोड़ देना पड़ा था। दूसरे प्रश्नपत्रों के उत्तर भी उसे सन्तोषजनक नहीं लगते थे, फिर भी वह उत्तीर्ण हुआ, और

* सूखे नहीं आँसू अभी तक अरे रे नयन से,
छुट सकी न प्रीति मृत्यु समय की हृदय से ;
तुम्हारा प्रिय का अहा न अभी तक चिन्तन मिटा,
न बुझ सकी प्यारे ! प्रणय-ज्वाला इस हृदय की !

सो भी अच्छे नम्बरों से। सारे कालेज में केवल सुरेन्द्र ही उससे ऊँचे क्रम पर था।

किरीट मन में दुःखित हुआ। सुरेन्द्र से नीचा क्रम स्वीकार करने की उसकी तैयारी बिलकुल नहीं थी। इसकी अपेक्षा परीक्षा में अनुत्तीर्ण होना वह ज्यादा अच्छा समझता था।

वह न किसी से मिलता और न उसे यही समझ में आता कि क्या करे ? न सुरेन्द्र से और न ही मीनाक्षी से वह मिला। पास ही रहने से सुरेन्द्र कभी मिल जाता; परन्तु उसके साथ वह नहीं-सी बात करता था। अनेकों कठिनाइयाँ उपस्थित होते हुए भी किरीट के अच्छी तरह उत्तीर्ण होने पर सुरेन्द्र उसे बधाई देने आया। किरीट को लगा कि वह उसे जलाने आया है।

'मुझे बधाई देने की अपेक्षा तुझे मिलनी चाहिये।' किरीट ने कहा।

'तब तो तुझे एक के बजाय मुझे दो बधाइयाँ देनी पड़ेंगी।' हँसते-हँसते सुरेन्द्र ने कहा।

'दो क्यों ?' वह चौंका। जिस बात का उसे डर था कहीं वही तो नहीं हुई है ?

'एक तो इसलिए कि मैं परीक्षा में प्रथम आया हूँ और दूसरे इसलिए कि मेरा विवाह होनेवाला है।'

'कब ?'

'पन्द्रह दिन में।'

' ।' किरीट ने केवल हुँकारी भरी।

थोड़ी देर तक दोनो कुछ न बोले। अन्त में सुरेन्द्र ने फिर बात शुरू की :

'तू कहीं जाएगा तो नहीं ?'

'क्यों ? शायद चला भी जाऊँ। आज प्रिन्सिपल से मिलने के बाद तै करूँगा।'

'मेरे विवाह से पहले तू कदापि नहीं जा सकता। फिर मीनाक्षी के परिवार की ओर से भी आग्रह होगा।'

'तेरा विवाह किसके साथ होनेवाला है?'

'क्यों? तुझे नहीं मालूम? मैंने एक बार कहा तो था कि मीनाक्षी के साथ मेरा विवाह होनेवाला है।'

'तो तू मेरी हँसी करने आया है, क्यों? इस तरह मेरा अपमान करते हुए तुझे शर्म नहीं आती?'

'अपमान कैसा?'

'थोड़े दिन पहले तुझे और तेरे पिता को यह विश्वास हो गया था कि मैं मीनाक्षी को चाहता हूँ और वह मुझे चाहती है।'

'हाँ, हाँ! वह तो केवल भ्रम था। तुझ पर हमें व्यर्थ ही सन्देह हो गया था। तुझे वह भूल जाना चाहिये। मैं उस भ्रम के लिए हृदय से लज्जित हूँ।'

'भ्रम? तू भूलता है। तुझे सतर्कता-पूर्वक बतलाता हूँ कि मीनाक्षी मुझे चाहती है और मैं मीनाक्षी को चाहता हूँ!'

यह सुनकर सुरेन्द्र जोर से हँसा। उसकी हँसी में विजय की ध्वनि थी, पराजित प्रतिस्पर्धी के प्रति घृणा थी।

'यह सम्भव हो सकता है कि तू मीनाक्षी को चाहता है, परन्तु मैं कदापि नहीं मान सकता कि मीनाक्षी तुझे चाहती है।'

'कारण?'

सुरेन्द्र ने फिर हँसकर कहा:

'कारण? कारण यही कि वह मेरे साथ विवाह करने के लिए तैयार है।'

'वह भले ही तेरे साथ विवाह करे, परन्तु उसके बाद भी तू मीनाक्षी से पूछते रहना कि वह किरीट को चाहती है या नहीं!'

'जा, जा, व्यर्थ की बात न कर। मीनाक्षी के बारे में और ऐसी

बात की तो तेरे साथ जीवन-भर के लिए लड़ाई हो जायगी।'

'मुझे लड़ाई की पर्वाह नहीं। मैं तो विश्वास-पूर्वक मानता हूँ कि मीनाक्षी मुझे चाहती है!'

'बस, अपनी जबान बन्द कर! यदि फिर मीनाक्षी का नाम लिया तो...'

किरीट बीच ही में बोला :

'इसमें मार-पीट तो करना नहीं है। तेरे आग्रह के लिए मैं तेरा कृतज्ञ हूँ।'

सुरेन्द्र क्रोध ही क्रोध में वहाँ से चला गया। किरीट का क्रोध शोक में परिवर्तित हो गया।

'सुरेन्द्र का कहना ही शायद सच हो!'

तो फिर उसे सुरेन्द्र के साथ लड़ने का कारण ही क्या? मीनाक्षी के दृष्टिकोण से विचार करने पर उसकी पसन्दगी को ग़लत भी कैसे कहा जाय? अध्ययन में किरीट का नम्बर नीचा रहा; फिर सुरेन्द्र उसकी अपेक्षा दिखावे में अधिक आकर्षक बन सकता था; और सुरेन्द्र के पिता के परामर्शानुसार मीनाक्षी ने भी समान स्थिति का विचार कैसे नहीं किया होगा? समानता याने? सुरेन्द्र धनिक और किरीट निर्धन! धनिक के लिए सभी तरह की सहूलियतें होती हैं। केवल ग़रीब किसी धनिक कन्या की ओर दृष्टि डाल ही नहीं सकता! डाले तो? उसकी अयोग्यता तत्काल सामने आ जाय! प्रेम भी अमीर और ग़रीब में भेद करता है! ग़रीबी ही सब तरह की अयोग्यता है!

प्रिन्सिपल ने उसे बुलाया था। घर से बाहर निकलने को उसका मन ही नहीं होता था। समय हो गया था। पाँव घसीटते हुए वह चला। प्रिन्सिपल गोरा था। किरीट और सुरेन्द्र दोनो पर उसका बहुत ही स्नेह था। समय हो चुकने पर भी वह बैठा किरीट की प्रतीक्षा कर रहा था। अपनी पत्नी के साथ विद्यार्थियों के बारे में इधर-उधर की

बातचीत कर वह समय बिता रहा था। किरीट आया।

'भीतर आ, अनियमित लड़के!' प्रिन्सिपल ने किरीट को बुलाया। मेम भी उसे पहिचानती थी। किरीट को बैठाकर प्रिन्सिपल ने पूछा :

'ऐसा क्यों हो गया? तेरी तबियत तो ठीक है?'

'ठीक है, साहब।'

'पहला नहीं आया तो इतना दुःखित क्यों होता है? यह तो बुरी बात है!'

'मुझे उसका दुःख नहीं।'

'मैं यह जानता हूँ कि ऐन वक्त पर कौटुम्बिक विपत्ति तुझ पर आ पड़ी। जिन संयोग में तू इतने ऊँचे क्रम से उत्तीर्ण हुआ उन संयोगों में और कोई उत्तीर्ण तक नहीं हो सकता था।'

प्रिन्सिपल किरीट की कार्य-कुशलता से परिचित थे इसलिए उन्हें ऐसा लगा, परन्तु उसका फल ही क्या? परिणाम देखनेवाला संसार कभी यह सोचता है कि संयोग ग़रीबों को चारों ओर से दबाये रख उनका विकास ही नहीं होने देते?

'यदि मेरी धारणानुसार तुझे नम्बर मिले होते तो मैं असिस्टेण्ट प्रोफेसर की जगह तेरी नियुक्ति के लिए सिफ़ारिश करता, परन्तु अब भी मैं तेरे लिए लेक्चरर की सिफ़ारिश करूँगा।'

'आपका कृतज्ञ हूँ।'

'परन्तु एम० ए० के लिए तू साथ ही साथ तैयारी कर। फिर तू प्रोफेसर हो सकेगा।'

'ठीक।'

'सुरेन्द्र के साथ तुझे वकील तो नहीं बनना है न?'

'जी नहीं। मुझे ऐसी सहूलियतें नहीं हैं।'

'पन्द्रह-सोलह दिन में मैं तुझे फिर बुलाऊँगा। तू कहीं जायेगा तो नहीं?'

'जी नहीं। विचार तो नहीं है।'

किरीट कहाँ जाता ? ग़रीब को कौन बुलाता है ?

'तेरे भविष्य के लिए मुझे बहुत ही चिन्ता है। यह चिन्ता मुझे ही करने देना। तू प्रसन्न रहना।'

'किरीट प्रसन्न नहीं रहता ?' मेम ने पूछा।

'नहीं। इसका जैसा आनन्द-रहित विद्यार्थी मैंने और कोई नहीं देखा।'

'ऐसा क्यों ?'

'मैं इसके निबन्ध जाँचता था। मुझे उन से ऐसा मालूम हुआ कि इसे संसार से दुश्मनी है। इसे अनार्किस्ट—अराजकवादी—राज्य-व्यवस्था-विरोधी—बनना है।' हँसते-हँसते प्रिन्सिपल ने कहा।

यह तो सच है कि किरीट के स्वानुभव ने उसे वर्तमान समाज-व्यवस्था का विरोधी बना दिया था। पाश्चात्य क्रान्तिकारी दार्शनिकों और अर्थशास्त्रियों के ग्रन्थों का उसने बहुत ही पठन और मनन किया था। मानव-बुद्धि क्या इतनी कुंठित हो गई है कि वह समाज के सभी-सदस्यों को सुख देनेवाली व्यवस्था रच ही नहीं सकती ? वह स्वयं भी ऐसी व्यवस्थाओं की कल्पना किया करता था। आखिर समाज भी कल्पना ही का मूर्त स्वरूप तो है।

प्रिन्सिपल के घर से लौटते हुए उसे एक परिचित विद्यार्थी मिला। उसने पूछा :

'क्या सुरेन्द्र की और तेरी लड़ाई हो गई है ?' विद्यार्थी-वर्ग भी समाज का एक अंग है। समाज की तरह उनमें भी झगड़े, ग़लत-फ़हमियाँ, निन्दा, चुग़ली आदि सब कुछ किसी न किसी स्वरूप में प्रचलित रहते ही हैं।

'तुझसे किसने कहा ?'

'स्वयं सुरेन्द्र ने ही कहा।'

'सुरेन्द्र को सबके साथ लड़ सकने की सहूलियत है।'

'क्यों ?'

'क्योंकि उसका बाप मालदार है।'

'तेरे खिलाफ़ उसने बहुत ही शिकायत की है।'

'की होगी।'

'फिर तेरे व्यवहार के विरुद्ध भी उसने कई आक्षेप लगाये हैं।'

'अच्छा ?'

'तुझे नहीं मालूम ?'

'आक्षेपों की खबर नहीं।'

'वह तो कहता था कि भिखारी की जैसी स्थिति में मीनाक्षी की इच्छा करना कैसी बेवकूफ़ी है !'

किरीट के सिर से पाँव तक आग लग गई ! उसके चुगलखोर परिचित ने इसके बाद कहा :

'और क्षय रोग जिसके परिवार में हो उसके साथ विवाह करेगा ही कौन ?'

किरीट धनी होता और अपनी मा की परिचर्या स्वयं न करके किसी अस्पताल या विश्रामगृह में किराये से परिचर्या के लिए छोड़ आया होता तो क्षय रोग की आपत्ति उसके विरुद्ध नहीं लगाई जा सकती थी।

'उसे जो ठीक लगे कहे।'

'मैंने तो यह भी सुना है कि मीनाक्षी को सुरेन्द्र के साथ विवाह करने के लिए राज़ी करने में बहुत मनाना पड़ा।

'तो मुझे इससे क्या ?' परन्तु ऐसी बेपर्वाही उसने केवल मुख से ही व्यक्त की। मन में तो उसके बड़ी चोट लग रही थी।

थोड़े दिन बाद उसे पता चला कि मीनाक्षी और सुरेन्द्र का विवाह तै हुआ है। विवाह का दिन आया। सुरेन्द्र के घर शहनाई बजने

लगी। सुन्दर वस्त्रालंकारों का प्रदर्शन करते हुए स्त्री-पुरुष घर में आने-जाने लगे। किसी ओर से गीतों की ध्वनि सुन पड़ने लगी।

'किरीट, तू नहीं जायगा ? तेरे साथी का विवाह है न ?' जमना मा ने, जो किरीट की देख-भाल करती थीं, कहा।

'जमना मा, मैं जाता हूँ अभी।' इतना कहकर किरीट ने नित्य पहिनने के सादे कपड़े पहिन लिये और मकान में ताला डालकर वह बाहर निकला।

परन्तु वह सुरेन्द्र के घर की ओर नहीं गया। उसने दूसरा ही मार्ग पकड़ा। मीनाक्षी का घर दूर था। वह उसी ओर को चल दिया।

मीनाक्षी का बँगला सुरेन्द्र के बँगले की अपेक्षा अधिक जाज्वल्य-मान रहा था। बँगले पर नया रंग किया गया था। बगीचे में एक सुन्दर मण्डप बनाया गया था ; बाजे बज रहे थे : स्त्री-पुरुष सुन्दर गहने-कपड़ों से विभूषित होकर इस तरह दौड़-धूप कर रहे थे मानो उनका ही विवाह हो। किरीट ने चलते-चलते यह सब देखा।

'आइये, मास्टर साहब !' फाटक के आगे से निकलकर जाते हुए किरीट को देख एक परिचित दरबान ने कहा।

उसे किसी ने निमन्त्रण नहीं दिया था। शीघ्रता से भुला दिये गये शिक्षक को घर में जाना न था। इन्द्रजाल को असत्य समझते हुए भी, मोहित हो उसके पीछे दौड़नेवाले, मुग्ध आदमी की तरह वह इस ओर आया था। दरबान का आमन्त्रण सुन वह जाग्रत हुआ और बोला :

'फिर आऊँगा।'

इतना कहकर किरीट ने मीनाक्षी की खिड़की की ओर देखा। मीनाक्षी खिड़की में ही खड़ी थी। उसने किरीट को देखा और किरीट ने मीनाक्षी को।

मीनाक्षी ने तत्काल दृष्टि फिरा ली ; और दूसरी ओर देखने लगी।

किरीट ने शीघ्रता से पाँव उठाये और संसार के किसी अज्ञात पर्दे में वह अलोप हो गया।

वह कहाँ था? क्या करता था? यह सब जानने की किसी को पर्वाह नहीं थी। प्रिन्सिपल को उसने पत्र लिखा था। उसमें नौकरी से अस्वीकृति प्रकट की थी। इसके सिवा किसी को उसके हालचाल के बारे में कुछ नहीं मालूम था। पता लगाने की किसी को आवश्यकता भी न थी।

सुरेन्द्र के प्रधानपद के प्रारम्भ में वह फिर जगत—अपने पुराने जगत—में दिखाई दिया था। क्यों? क्या उसे अब भी अपने पुराने जगत के प्रति ममता थी?

अन्यथा चमेली से मीनाक्षी की बात सुनकर उसका मन व्यग्र क्यों हो जाता? क्यों उसे अपने भूतकाल की होली, सारी रात जगकर, फिर से धधकानी पड़ती? आँख मूँदकर अपने भूतकाल में ही जाग्रत रहनेवाले किरीट ने चमेली की आवाज सुनकर आँख खोली।

२६

बोले बोले छे गिरिओ मां मोर,
            वेलड टहूका करे !
मारे अंतर उछले अंकोर,
            जीवन झोले चडे ! *

—न्हानालाल

किरीट अपने छापेखाने की एक छोटी कोठरी में बैठा था। कोठरी में तीन-चार कुर्सियाँ थीं। किरीट नीचे बैठा हुआ था। उसके सामने एक पुराने ढंग की चौकी जैसी—बैठे-बैठे लिखने की डेस्क थी। मधुकर, कुंज, अश्विन और गजेन्द्र उसके पास शतरंजी पर बैठे हुए थे। अकेला पीयूष एक कुर्सी पर बैठा था, क्योंकि उसने अंग्रेजी काट के उजले और साफ कपड़े पहिन रखे थे। उसका चेहरा प्रसन्न था। स्वाभाविक ढंग से वह विज्ञान की कोई प्रक्रिया समझ रहा था। किरीट अपनी कोठरी में होता तो कोई भी बिना इजाजत भीतर नहीं आ सकता था। छापेखाने या दूसरे किसी काम के प्रसंग से किसी को मिलना होता तो

---

* बोल रहे हैं गिरि पर मयूर,
            कोयल कूक रही !
मेरे उर में फूटे अंकुर,
            जीवन झूल रहा !

कोठरी के बाहर बैठा हुआ आदमी दरवाजे पर एक बटन दबाता था, जिससे कोठरी में घंटी बजती थी। उसके प्रत्युत्तर में किरीट कोठरी में से बटन दबाता था तो बाहर घंटी बजती थी। जब तक प्रत्युत्तर नहीं मिलता दरवाजे पर बैठा हुआ आदमी भी भीतर प्रवेश नहीं कर सकता था। पीयूष की बात समाप्त करने से पहले ही घंटी बजी। किरीट ने तत्काल प्रत्युत्तर दिया। दरवाज़ा खुला और एक आदमी ने प्रवेश किया।

'कोई स्त्री आपसे मिलना चाहती है।'

'थोड़ी देर बैठने दे। बुलाता हूँ।'

'निबटा दो न! मुझे समय लगेगा।' पीयूष ने कहा। 'मैं यह कहना चाहता हूँ कि एक ही वैज्ञानिक क्या-क्या कर सकता है।'

'ग़रीब की हाय' के सिलसिले में अनेकों स्त्री-पुरुष किरीट से मिलने आते और अपनी फ़रियादें, दुःख और कठिनाइयाँ उससे कह जाते। न केवल उनका उपयोग पत्र में बहुत ही प्रभावोत्पादक ढंग से किया जाता था; परन्तु ऐसी चर्चा भी जनता में की जाती की यदि ये कठिनाइयाँ सच हों तो उनके निवारण का प्रयत्न भी किया जाय। सब ने यही सोचा था कि ऐसी ही कोई दुखिया स्त्री आपबीती सुनाने आई होगी। मिलने आनेवाला सहज पूछने पर अपना नाम बतलाता तो ठीक अन्यथा नाम पूछने का अधिकार किरीट के सिवा और किसी को नहीं था।

'ठीक! ऐसा ही करो, बुलाओ।'

'हम बाहर बैठते हैं!' मधुकर ने कहा। किसी को अपनी कहानी सुनानी होती तो उस समय जहाँ तक होता किरीट के सिवा और कोई नहीं रहता था। हाँ, यदि सुनानेवाले को कोई आपत्ति न होती तभी दूसरे बैठ सकते थे।

'आने तो दो। उसे आपत्ति हो तो तुम चले जाना।'

आगन्तुक ने भीतर प्रवेश किया। लेडी मीनाक्षी को आते देखकर सब कोई स्तब्ध हो गये। केवल पियूष ने स्थिरता से एक कुर्सी मीनाक्षी के पास रख दी। किरीट भी खड़ा हो गया था मीनाक्षी ने किरीट को अकेला ही देखने की आशा रखो थी। उसने किरीट से कहा :

'मेरी मोटर बाहर है। आ सकोगे ?'

'आता हूँ।' किरीट बोला।

मीनाक्षी आगे चली। किरीट ने मधुकर और दूसरे युवकों से कहा :

'अब रात को मिल सकेंगे। तुम चले जाना।'

किरीट मन्त्र-मुग्ध की तरह मीनाक्षी के पीछे-पीछे चला गया।

पीयूष ने आँख मटकाकर पूछा :

'यह परिचय कब से हुआ ?'

'पत्र में सर सुरेन्द्र के विरुद्ध कड़ी टिप्पणियाँ निकलने से परिचय का प्रसंग उपस्थित हुआ होगा।'

'मुझे भी ऐसा ही लगा था, परन्तु ऐसा कुछ नहीं है। लेडी मीनाक्षी तो किरीट को भी पहिचानती हैं और चमेली को भी पहिचानती हैं।' मधुकर ने कहा।

'मधुकर चमेलीमय होता जा रहा है।' कुंज ने हँसकर कहा।

'इसमें बुरा क्या है ?' अश्विन ने कहा।

'किरीट भाई पुतले की तरह खड़े हुए और पुतले की तरह पीछे हो लिये !' पीयूष ने कहा।

'सच है। किरीट भाई को कभी इस तरह स्वत्वहीन होते नहीं देखा।' अश्विन बोला।

उसकी बात सच थी, मीनाक्षी गाड़ी में बैठी। दरवाजे के पास खड़े हुए किरीट से उसने कहा :

'बैठो न !'

मीनाक्षी का कंठ बदला न था। किरीट उसे पढ़ाता था तब उसमें

जो माधुर्य था वही माधुर्य अब उसे अधिक परिपक्व मालूम होता था।

वह बिना बोले मोटर में बैठा। मीनाक्षी के ठीक पास नहीं—बहुत संकुचित होकर दूर—परन्तु एक ही बैठक पर वह बैठा। दस-बारह वर्ष पहले गाड़ी में एक साथ बैठने की याद उसकी आँखों के आगे आ गई। कुछ देर बाद उसने मीनाक्षी की ओर देखा। मीनाक्षी की दृष्टि दूसरी ओर थी। मीनाक्षी की अनुपस्थिति में उसके प्रति होने-वाली बैर और घृणा की भावना उसे देखते ही दब क्यों गई?—किरीट सोचने लगा।

मोटर बहुत दूर निकल गई। दोनो जने एक अक्षर बोले बिना, एक दूसरे को देखे बिना, बैठ रहे थे। फिर भी दोनो की मानसिक दृष्टि तो एक-दूसरे को देखा ही करती थी।

'हम कहाँ जा रहे हैं?' मीनाक्षी ने पूछा।

'मुझे खयाल नहीं। आप जहाँ ले जायँ। मोटर आपकी है।' किरीट में अब कहीं बोलने की दृढ़ता आई थी।

'बस, यहीं गाड़ी रोकी जाय। आगे पैदल चलकर घूमेंगे।'

इतना कहकर मीनाक्षी ने शहर के बाहर एकान्त-स्थान में गाड़ी रुकवाई। किरीट और मीनाक्षी दोनो नीचे उतरे और पैदल चलकर निर्जनता की शान्ति में मिल गये। दोनो में से कोई कुछ बोलता न था।

'बहुत वर्ष बाद मिले।' अतिशय शान्ति से घबराकर अन्त में मीनाक्षी बोली।

'हाँ, दस-ग्यारह वर्ष हुए होंगे।'

फिर बात बन्द हो गई। एक दूसरे को कहने को तो बहुत कुछ था, परन्तु कुछ कहा नहीं जाता था। बिना बोले घूमने में मज़ा नहीं आता था। तिस पर दस वर्ष बाद मिलनेवाले प्रेमियों के हृदय तो बहुत-बहुत बातें सोचते हैं, परन्तु वे बातें वाणी में नहीं उतर पातीं।

'ज़रा बैठें?' एक छोटे-से नाले के बाँध पर आते ही मीनाक्षी ने पूछा।

'हाँ, आप थक गई होंगी।'

'अधिक चलने की आदत नहीं रही। अकेले चलने में थकान होती है।'

'सर सुरेन्द्र साथ नहीं आते?'

'हुँ!' मीनाक्षी रुखी हँसी हँसी, परन्तु कुछ बोली नहीं।

नाले के ईंटोंवाले बाँध पर दोनो बैठे। बैठने से पहले मीनाक्षी ने रूमाल से जगह झाड़ डाली। फिर शान्ति छा गई। थोड़ी दूर पर सियार रो उठे : हुआ! हुआ! हुआ!

'सन्ध्याकाल हुआ।' मीनाक्षी ने कहा।

'हाँ। फिर रात हो जायगी।' किरीट ने जवाब दिया।

किरीट बोलता क्यों नहीं? और बोलता भी है तो कितना कम और सांकेतिक? वह खुल्लम-खुल्ला मीनाक्षी से झगड़ पड़े, कड़वी से कड़वी बातें कहे तभी मीनाक्षी को अच्छा लगे। मीनाक्षी के हृदय का भार कम हो जाय और दस-दस वर्ष के वियोग द्वारा खड़ी की गई संकोच और वियोग की दीवालें ढह जायँ।

उसे किरीट के हृदय का निरीक्षण करना था। पर उसने तो निःशब्दता में हृदय को ढाँक रखा था।

'अब वापिस चलें।' मीनाक्षी ने खड़ी होते-होते कहा।

'चलो।' कहकर किरीट साथ हो लिया।

दोनो साथ-साथ चलते थे, परन्तु एक दूसरे का स्पर्श न हो इस बात की दोनो सावधानी रख रहे थे। चलते-चलते आसमान में सैकड़ों तारे फूटते हुए उन्होंने देखे। मीनाक्षी को क्रोध आ गया। आकाश को चमकानेवाले ये तेजोबिन्दु सारी रात टकटकी लगाकर देखा करें, हँसा करें; दौड़ा करें। फिर भी हृदय की धड़कन जैसी आवाज़ भी न

सुनाई दे, यह कैसा ? यह कैसी भयंकर शान्ति है ! फिर वे चमकते क्यों हैं ? थोड़ी-सी भी ध्वनि हो तो आकाश कितना सजीव मालूम पड़ने लगे !

आँख की पलकें उठती और गिरती हैं ; मिलती और खुलती हैं ; तो भी उनके भाग्य में मूक रहना लिखा है ! मनुष्य की जबान न होती तो यह पृथ्वी भी आकाश जैसी घन गम्भीर न हो जाती ? परन्तु प्रेमी यदि इस वाक्शक्ति का उपयोग करना छोड़ दें तो जीवन असह्नीय हो जाय !

दूर पर सियार फिर रो उठे : हुआ ! हुआ ! हुआ !

अबोल मनुष्य की अपेक्षा सियार जैसे प्राणी का रुदन भी कितना सजीव मालूम होता है ! एक के बाद उठती गिरती शान्ति-प्रेरक पद-ध्वनि के साथ बिना कुछ बोले दोनो लौट रहे थे। मीनाक्षी इस शान्ति से बहुत ही डर गई। एकाएक दूर से मोटर का प्रकाश आता हुआ दिखाई दिया। बहुत देर हो जाने से मोटर ड्राइवर उन्हें खोजने के लिए आ रहा था।

'मोटर आ रही है।' मीनाक्षी ने बोलने का प्रयत्न किया। इस प्रयत्न को निरर्थक करता हुआ जवाब किरीट ने दिया :

'हाँ।'

इस एकाक्षरी शब्द से चिढ़ी हुई मीनाक्षी ने मोटर रुकवाई और उसमें बैठ गई। किरीट भी बैठा।

'कहाँ चलना है ?' मीनाक्षी ने पूछा।

'घर !' किरीट ने कहा।

'मैं उस ओर से होकर मोटर ले चलने को कहूँ ?'

'धन्यवाद !' किरीट ने कहा।

मीनाक्षी ने किरीट के घर की ओर से गाड़ी ले चलने की सूचना ड्राइवर को दे दी। गाड़ी सर्राटे से चल दी। थोड़ी देर में किरीट का

आंगन आ गया। गाड़ी खड़ी हो गई। किरीट उसमें से उतरा। मीनाक्षी ने पूछा :

'अब कब मिलोगे ?'

'अभी और मिलना बाक़ी है ? किस लिए ?'

ये प्रश्न सुनकर मीनाक्षी का हृदय बहुत ही अधिक दुःखित हो गया। उसने किरीट से मिलाने के लिए अपना हाथ आगे बढ़ाया। दोनो के हाथ मिले और मीनाक्षी के मुँह से निकल गया :

'किरीटकान्त, तुम बहुत ही घातक हो गये हो !'

'मुझसे कहती हो ?'

'हाँ, तुम्हीं से !'

'दस वर्ष पहले मैं घातक न था !' किरीट ने पूछा।

परन्तु इसका जवाब मीनाक्षी के पास न था। उसने हाथ छोड़ दिया और मोटर आगे बढ़ी।

मीनाक्षी घर पहुँची। सर सुरेन्द्र उसकी प्रतीक्षा में बैठे थे।

'कोई दिन नहीं और आज जल्दी कहाँ से ?' मीनाक्षी के मन में प्रश्न उठा।

'तेरे लिए मैं आज जल्दी आया तो तूने ही देर लगाई। इतनी अधिक देर क्यों हुई ?' मीनाक्षी का हाथ पकड़ उसे अपने पास सोफे पर बैठाते हुए सुरेन्द्र ने कहा।

'आज देर लग गई।' मीनाक्षी ने देर होने का कारण नहीं बतलाया।

'जब मैं घर लौटूँ, उस समय तू भी घर पर ही रहा करना।'

'क्यों ?'

'मैं अकेला पड़ जाता हूँ। तेरे बिना सुहाता नहीं।'

मीनाक्षी ने सुरेन्द्र की ओर देखा। उसे सुरेन्द्र की बात सच लग रही थी। मीनाक्षी का हृदय क्षुब्ध हो गया। सुरेन्द्र उसका पति था।

वह किरीट को क्यों याद किया करती थी !

'परन्तु साँझ को तो तुम क्लब में जाते हो !'

'अब रोज नहीं जाऊँगा, क्लब में मन ऊब जाता है। वही की वही बात !'

वास्तव में, आज तक सर सुरेन्द्र ने इतना अधिक सक्रिय जीवन बिताया था कि कभी-कभी उनके शरीर और मन को विश्राम की इच्छा हो आया करती थी। कचहरी में काम करते-करते एक दिन उन्हें विचार हो आया कि उनके चपरासी, कारकुन और मन्त्रियों की अपेक्षा मीनाक्षी का चेहरा अधिक सुहावना है ! यह विचार आते ही वह हँसे।

'कैसा असम्बद्ध विचार है।' वह मन ही मन बोले।

आज क्लब में टेनिस खेलते समय तक तो उसका मन प्रफुल्लित रहा, परन्तु ताश लेकर ब्रिज पर बैठने के बाद उसने भिल्लू को वही पुरानी मज़ाक करते हुए सुना। शिष्टाचार की खातिर सब ज़बर्दस्ती हँसे, परन्तु खेलने में सुरेन्द्र का मन नहीं लगा। वह उठकर दूसरी टोली में जा बैठा। वहाँ दो-तीन दिखनौटी स्त्रियाँ निजी चाल-चलन के बारे में रस-भरी चर्चा कर रही थीं। यह चर्चा उसने एक सप्ताह पहले सुनी थी इसलिए सुरेन्द्र को इसमें कुछ भी नवीनता नहीं मालूम हुई। फिर इन स्त्रियों के निजी चाल-चलन से किसी को कोई लाभ नहीं होने का था। सुरेन्द्र को लगा कि मीनाक्षी के पास बिना कुछ बोले-चाले चुपचाप बैठने पर भी उसके मन को आराम मिलेगा। वह घर चला आया।

मीनाक्षी घर न थी। इच्छा पूर्ण न होने तक मन व्यग्र रहता है। बहुत दिनों बाद सुरेन्द्र ने मीनाक्षी की भाँति-भाँति की तसवीरें देखने में समय बिताया। ज्यों-ज्यों वह तसवीरें देखता जाता था मीनाक्षी की निकटता के लिए उसके मन की तड़प बढ़ती जाती थी। कितने ही वर्षों से कीर्ति-शिखर पर आरोहण करने के महा प्रयत्न में मीनाक्षी

का अस्तित्व भी उसके मन में तसवीर जैसा ही हो गया था। घूमती-फिरती तसवीर या सुन्दर पुतली की अपेक्षा मीनाक्षी का महत्त्व अधिक न था। आज काम और मित्रों से ऊबे हुए सुरेन्द्र के मन में मीनाक्षी की तसवीरों में से सजीव मीनाक्षी को खींच निकालने की इच्छा हो आई। मीनाक्षी देर से आई उसके पहिले ही सर सुरेन्द्र ने निश्चय कर रखा था कि हर साँझ अब मीनाक्षी को अपने निकट रखना ही पड़ेगा।

'मैं कपड़े बदल आऊँ।' मीनाक्षी ने कहा।

'चल, मैं भी तेरे साथ चलता हूँ।'

ऐसी असभ्य माँग का कारण ? साधन-सम्पन्न व्यक्ति प्रत्येक कार्य के लिए अलग-अलग कमरे रखते हैं। पत्नी के कपड़े बदलने की जगह पति का क्या काम ?

मीनाक्षी का हाथ पकड़कर सर सुरेन्द्र भी साथ हो लिया। एक दो नौकरों और दासियों ने यह स्नेह-प्रदर्शन देखा। मीनाक्षी ने हाथ छुड़ाने का काफी प्रयत्न किया पर सुरेन्द्र ने हाथ नहीं छोड़ा।

कमरे में आते ही बिजली की बत्ती के जाज्वल्यमान प्रकाश में सुरेन्द्र ने शीशे में मीनाक्षी का प्रतिबिम्ब देखा। शीशे ने न जाने कितनी प्रेम-चेष्टाएँ अपने हृदय में समा रखी होंगी। संसार के काँच जवाब देंगे ?

सुरेन्द्र ने मीनाक्षी के गाल पर अपना गाल रख दिया। मीनाक्षी झट दूर हट गई और बोली :

'हमारी उम्र अब बहुत अधिक हो गई है, क्यों ?'



२७

मननुं बधुं मनमां मर्युं,
आ विश्व त्यां वचमां नड्युं;
हावां गीत एकज आ रह्युं,
गावुं गीत आंसुडां भरी ! *

—कलापी

'इन्स्पेक्टर दीनानाथ आया है।' नौकर ने सुरेन्द्र को खबर दी।
'क्यों ? कुछ सम्वाद मिला है क्या ? बुलाओ।'
दीनानाथ भीतर आ सलामकर खड़े हो गये। अपने से भी कम उम्र इस तेजस्वी मंत्री का चेहरा उन्हें मुर्झाया हुआ दीखा।
'क्यों इन्स्पेक्टर ?'
'साहब, आज पहली तारीख है।'
'मैं जानता हूँ। यह खबर देने के लिए तुम आये हो ?
'जी हाँ।'
'अरे! इसलिए...हाँ, हाँ! मैं भूला। उस बदमाश के आज

* मन की सभी मन में रही,
यह संसार बीच में आ पड़ा ;
अब गीत एक ही यह रहा,
आँसू भर-भर गीत गाऊँ !

'आने की सम्भावना है क्यों ?'

'मेरा ऐसा ही खयाल है। चाहे जब आ सकता है, परन्तु आपके साथ हुई उसकी बातचीत से मुझे लगता है कि वह आज ही आयेगा। अपराधियों का मिथ्याभिमान भी अजीब होता है।'

'तो तुम आज कड़ा पहरा रखो।'

'जी हाँ। वह तो होगा ही, परन्तु मैं आपको एक सलाह दूँ तो कोई हानि तो नहीं है ?'

'कहो, हानि नहीं।'

'यदि आज का दिन कचहरी में न जाकर आप रेल-मार्ग से कहीं अन्यत्र चले जायें तो कैसा रहे ?

'तार करने पड़ेंगे।'

'वे ही जायँगे। आप जहाँ भी जायें, इतना काम निकल सकेगा।'

सर सुरेन्द्र ने अपने सेक्रेटरी को बुलाया। उसे लगभग सौ मील दूर एक शहर के हाकिम को अपने आने की सूचना तार द्वारा करने की आज्ञा दी। वहाँ शिक्षकों के वेतन बढ़ाने का आन्दोलन उग्र रूप धारण करता जाता था। उसके सिलसिले में ठीक तरह से जाँच करने की आवश्यकता भी थी।

सेक्रेटरी के जाने के बाद दीनानाथ ने कहा :

'आपके सेक्रेटरी यहीं रहें तो अधिक अच्छा।'

'क्यों ?'

'आपके जाने की खबर यहाँ जितनी कम फैले उतनी ही अच्छा।

'ठीक। यहीं रहेंगे। मेरे घर में ही भोजन करेंगे।'

'इन्हें साथ ही ले जायँगे न ?'

'हाँ।'

'अपना वेतन आज आप मत लीजिये। किसी और को अधिकार-पत्र दे दीजिये।'

'ओ हो ! इतनी अधिक सावधानी का कारण ?'

'हुजूर, क्षमा कीजिये, परन्तु ऐसा काम करनेवाली टोली बहुत ही भयंकर है।'

'तुम्हें कुछ पता लगा ?'

'इसका जवाब मैं नहीं दे सकूँगा, परन्तु इस टोली का पता लगाने के मैंने जो रास्ते सोचे हैं यह उनमें से एक है।'

'ठीक। पुलिस की इच्छा के अधीन हुए बिना छुटकारा नहीं।' हँसकर सुरेन्द्र ने कहा।

'आप किसके नाम से अधिकार-पत्र देंगे ?

'मेरे एक यूरोपियन सहकारी के नाम।

'अच्छा।'

'और मुझे भी तुम नजरबन्द रखोगे न ?' बातूनी मन्त्री ने दीनानाथ की मजाक उड़ाई।

'जी नहीं। हम कौन हैं आपको नजरबन्द रखनेवाले ? हमारी हस्ती ही क्या ?'

सुरेन्द्र अपने इतने अधिक महत्त्व के खयाल से जरा खुश हुआ। दीनानाथ इतनी व्यवस्था कर मंत्रीजी को सलाम बजा चला गया। यह मालूम नहीं हुआ कि उसने दूसरा क्या प्रबन्ध किया है।

थोड़े दिनों से खाली होते ही सुरेन्द्र मीनाक्षी के पास जा बैठता। मीनाक्षी की यह बात कि सुरेन्द्र और मीनाक्षी की उम्र अब अधिक हो गई है सुरेन्द्र को जँची नहीं। न शीशे ने इसका समर्थन किया और न उसके हृदय ने। मीनाक्षी के चेहरे की ओर देखकर सुरेन्द्र को लगता था कि मीनाक्षी का चेहरा अधिक लावण्यमय होता जा रहा है। लोलुप पुरुष। उसका बचपन कभी मिटता ही नहीं।

फिर सुरेन्द्र को कुछ ऐसा लगने लगा था कि उसके पिछले कई वर्ष निरर्थक ही बीत गये हैं। उसने धन, कीर्ति और सत्ता हस्तगत की

थी। यह सब प्राप्त करने के बाद, मानो कुछ और पाना बाकी रह गया हो, ऐसा असन्तोष उसके मन में रहने लगा। सन्तोष के लिए हाथ-पाँव मारनेवाले उसके मन को खयाल आया कि एक महत्त्वपूर्ण वस्तु की प्राप्ति की ओर उसने दुर्लक्ष्य किया था। मीनाक्षी को उसने प्राप्त तो किया था, पर क्या वह सचमुच उसे अपनी बना सका था?

मीनाक्षी के आवेगहीन स्वभाव के बावजूद भी उसे सदा अपने सामने रखने को उसका मन क्षण-क्षण पर हो आता था। दीनानाथ के चले जाने के बाद वह मीनाक्षी के पास गया।

'मीनाक्षी, आज साँझ को मैं तेरे साथ घूमने न आ सकूँगा।' सुरेन्द्र ने कहा।

'क्यों?'

'अचानक ही मुझे बाहर गाँव जाना पड़ गया।'

'आओगे कब?'

'दो दिन लगेंगे।'

मीनाक्षी कुछ न बोली। उसके चेहरे से यह कुछ भी मालूम नहीं हुआ कि इस समाचार से उसे खुशी हुई है या रंज। सुरेन्द्र देखना चाहता था कि उसकी अनुपस्थिति की बात पर मीनाक्षी दुःख प्रकट करे जल्दी लौट आने का आग्रह करे—यहाँ तक कि उसके साथ ही चलने की ज़िद करे!

परन्तु मीनाक्षी तो कुछ भी नहीं बोली। सुरेन्द्र को बुरा लगा; वह बोला:

'मीनाक्षी क्या मैं तुझे अच्छा नहीं लगता?'

मीनाक्षी सुरेन्द्र की ओर घड़ी भर देखती रही। सुरेन्द्र को सचमुच न केवल बुरा लगा, परन्तु उसका चेहरा भी दयनीय हो गया। मीनाक्षी ने इस विजयी योद्धा को कभी भी इस तरह विनम्र होते हुए नहीं देखा था। उसे दया हो आई। और कुछ नहीं तो वह उसका पति तो था ही!

'ऐसा क्यों ? कैसे कहते हो ?'

'मेरे लिए तूने भी पागलपन नहीं दिखलाया।'

'जब पागलपन दिखलाया तो उस समय तुमने देखा नहीं और अब तो मैं तीस वर्ष की होने आई।' मीनाक्षी कई वर्षों बाद एक साथ ये दो वाक्य बोली।

'तो क्या यह माना जाय कि तीस साल में जिन्दगी खतम हो गई ?'

'मेरी जिन्दगी तो इससे भी पहले समाप्त हो गई है।' चाहकर भी मीनाक्षी ने यह नहीं कहा। उलटा उसने पूछा :

'एकदम क्यों जाना पड़ गया ?'

'फिर कहूँगा, आकर।'

पति को पत्नी का विश्वास तो है नहीं—मीनाक्षी का मन दुखित हो गया। फिर से वह आवेगहीन हो गई; शीतल, कठोर, मौन—पाषाण-प्रतिमा जैसी—सौन्दर्यमयी परन्तु निष्प्राण।

दोपहर को दफ्तर जाने के बदले सुरेन्द्र अपने प्राइवेट-सेक्रेटरी के साथ स्टेशन गया। गाड़ी आने में पाँच-छः मिनट की देर थी। तीसरे दर्जे के किराये पर लाखों का मुनाफा उठानेवाली रेलवे कम्पनी के व्यवस्थापक यही मानते हैं कि दूसरे और पहले दर्जे के मुसाफिरों ही को आराम और अच्छे प्रबन्ध का आवश्यकता होती है। तीसरे दर्जे के यात्रियों और मूक पशुओं में बहुत ही कम अन्तर होता है। पहले और दूसरे दर्जे के यात्रियों की मानवता इतनी अधिक विकसित हो रहती है कि उनके लिए सुख-सहूलियतों से पूर्ण जुदे कमरे रखे जाते हैं। तीसरे दर्जे में यात्रा करनेवाला अभागा पशुता के इतने अधिक निकट होता है कि उसके बैठने की तो बात अलग, ठीक खड़े रहने की सहूलियत करना भी कम्पनी आवश्यक नहीं समझती !

सर सुरेन्द्र वेटिंग रूम में बैठे। पहले-दूसरे दर्जे में बैठनेवाले महानुभाव रेलगाड़ी के मालिकों का जितना धैर्य और शान्ति रखते

हैं। उनका ऐसा विश्वास होने से कि रेलगाड़ी उन्हें लिये बिना आगे बढ़ेगी ही नहीं, वे आराम से बैठकर अखबार पढ़ते रहते हैं।'

टिकिट लेकर कमरे के बाहर खड़े सर सुरेन्द्र के सेक्रेटरी के समीप आकर एक आदमी ने शीघ्रता से पत्र दिया।

'भीतर सर सुरेन्द्रलाल हैं?' उसने शीघ्रता से पूछा।

'हाँ, क्यों?'

'यह बहुत जरूरी पत्र है। साहब को दे दीजिये!'

'कहाँ से लाये? किसका पत्र है?'

'गाड़ी का समय हो गया है। आप जल्दी से दे दीजिये। मुझे उनसे मिलना है। फिर मैं सब कहता हूँ।'

आगन्तुक के चेहरे पर इतनी अधिक आतुरता दिखाई देती थी कि सेक्रेटरी को भीतर जाकर पत्र देना ही पड़ा।

'किसका पत्र है? दीनानाथ का?' सर सुरेन्द्र ने पूछा। उसकी योजनानुसार बाहर जाने का कार्यक्रम बनाया था इसलिए सर सुरेन्द्र को लगा कि उसी की ओर से कुछ सूचना आई होगी। उन्होंने लिफाफा फाड़कर भीतर से पत्र निकाला और वह पढ़ने लगे :

> मैं आपके साथ ही हूँ।
> आज आपसे चेक लिखवाना है, उसकी याद दिलाता हूँ।
> ऐसी आशा है कि पिछले महीने की तरह आप आनाकानी नहीं करेंगे। आप चेक लिख रखें, ताकि आपके उतरने से पहले आपके पास आकर मैं ले जाऊँ। नहीं लिख रखा होगा तो मैं आकर लिखवाऊँगा।
> पुलिस की खटपट में मत पड़ना; वह निरर्थक होगी।

पत्र पढ़कर सुरेन्द्र ने सेक्रेटरी की ओर देखा। सुरेन्द्र के चेहरे पर भय की स्पष्ट छाया सेक्रेटरी देख रहा था।

धमधमाती हुई गाड़ी स्टेशन पर आ खड़ी हुई।

'मैं सामान रखवा दूँ?' सेक्रेटरी ने पूछा।

'यह पत्र किसने दिया ?'

'पत्र देनेवाला बाहर खड़ा है। बुलाऊँ ?'

'कोई पुलिस का सिपाही है या नहीं ?'

'जी हाँ; दो-चार सिपाही हैं। एक दरवाज़े के बाहर ही खड़ा है।'

'पत्र देनेवाले को पुलिस के हवाले कर दो।'

सेक्रेटरी ने बाहर आकर उस आदमी को देखा, परन्तु वह वहाँ नहीं दीखा। उसने पुलिस के सिपाही से पूछा, परन्तु साहब को अदा से सलाम करने की तैयारी में खड़े उस बाँके सिपाही को यह खबर न थी कि कौन कहाँ गया है।

जल्दी से सेक्रेटरी सारा प्लेटफार्म और गाड़ी के डिब्बे ढूँढ़ गया। पत्र देनेवाले का पता न लगा। वह सुरेन्द्र के पास जा रहा था कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रखा। चौंककर उसने पीछे देखा।

सादी पोशाक में दीनानाथ पास खड़ा हुआ दिखाई दिया। दीनानाथ ने पूछा :

'साहब अभी गाड़ी में नहीं बैठे ?'

'नहीं। वे तो किसी सिपाही को चाहते हैं।'

'क्यों ?'

'मालूम नहीं, परन्तु एक पत्र पढ़कर उन्होंने पत्र देनेवाले को गिरफ्तार करने की आज्ञा दी है।'

'पत्र ? किसका पत्र ?' साश्चर्य दीनानाथ ने पूछा।

'यह तो मुझे भी नहीं मालूम।'

'चलो ! चलो !' कहकर दीनानाथ शीघ्रता से वेटिंग रूम की ओर भागा।

सर सुरेन्द्र ने उसके हाथ में पत्र रख दिया। पढ़कर दीनानाथ सोच में पड़ गया।

स्टेशन मास्टर को सर सुरेन्द्र के जाने की खबर मिल गई थी। गाड़ी रवाना होने का समय हो जाने पर भी जब वह गाड़ी में नहीं बैठे तो स्टेशन मास्टर ने आकर विनय-पूर्वक उनसे गाड़ी में सवार हो जाने के लिए कहा।

'साहब नहीं जाएँगे। गाड़ी जाने दो।' दीनानाथ ने कहा।

गाड़ी चल दी। सर सुरेन्द्र ने दीनानाथ से पूछा :

'अब क्या करना है ?'

'आपके जाने की बात बहुत जल्दी बाहर फूट गई।'

'मैंने तो किसी से कहा नहीं। मैं, तुम, मेरे सेक्रेटरी और यूरोपियन सहकारी के सिवा किसी को खबर नहीं दी। मोटर ड्राइवर और अर्दली को भी घर से चलते वक्त ही पता लगा था।'

'और किसी से तो नहीं कहा ?'

'नहीं।'

'आप याद कर सकेंगे ? शायद घर में बात की हो ?'

'हाँ, हाँ, अवश्य ! अपनी पत्नी से तो मैं कहूँगा ही।'

'उन्होंने किसी से कहा हो !'

'वह तो इतना कम बोलती है कि उसका खयाल ही नहीं आ सकता !'

मानो इस वाक्य को समझा हो न हो, इस तरह चेहरे को स्थिर करके दीनानाथ खड़ा रहा।

'अब मैं दफ़्तर में जाऊँ ?' सुरेन्द्र ने पूछा।

'साहब, एक-दो घण्टे आप यहीं न ठहरें ? मैं दफ्तर में हो आऊँ और आपको खबर करूँ तब आप पधारें।'

'इस तरह छिपे रहने का कारण ?'

'आपके पीछे षड्यन्त्रकारी लगे हुए हैं।'

सर सुरेन्द्र को हँसी आ गई। इधर-उधर दृष्टि डालने पर कोई

दिखाई नहीं दिया।

'मुझे इतना अधिक महत्त्व देने में षड्यन्त्रकारियों का क्या हेतु होगा?

'इसका ही पता चले तो सब कुछ समझ में आ जाय। मैं आज साँझ से पहले इस बात का पता पाने की आशा रखता हूँ।'

'अच्छा! तो बहुत ठीक! आज मैं तुम्हारे कहने से ही चलूँगा।'

'आपका कृतज्ञ हूँ। इससे मेरे काम में बहुत ही सरलता होगी। मैं आपके दफ़्तर में जाता हूँ।'

'क्यों?'

'मुझे आपके वेतन की चिन्ता है।'

'किसी ने ले लिया होगा?'

'सम्भव है।'

सुरेन्द्र फिर हँसा, परन्तु उसकी हँसी में भय छिपा हुआ था।

'वह तो सहकारी ने ले लिया होगा। उसके सिवा किसी और को पता भी तो नहीं लग सकता।'

'ठीक, परन्तु मेरे आये बिना आप यहाँ से चले न जाइयेगा।'

दीनानाथ भी चला गया। सुरेन्द्र को स्थिति बहुत ही विचित्र मालूम हुई। संसार में उसका कोई दुश्मन नहीं था। दूसरे मन्त्री भी थे, फिर क्यों अकेले उसी पर यह ज़ुल्म ढाया जा रहा था?

बाहर एक छोटे बच्चे के रोने की आवाज़ आई। रोना सभी को अप्रिय लगता है। सुखमय जीवन बितानेवाले को वह बिलकुल ही नहीं सुहाता। सुरेन्द्र के विचारों में इस रोने ने विघ्न डाला। उसने चेहरे से खीझ प्रकट की, परन्तु खीझने से बालक चुप नहीं होता। बालक ने अधिक ज़ोर से चीखना शुरू किया और साथ ही दूसरे बालक की चिल्ल-पों भी अशान्ति बढ़ाने लगी।

सुरेन्द्र ने उठकर वेटिंग रूम की खिड़की में से बाहर देखा।

स्टेशन के बाहर सिर के नीचे गठरी रखे एक आदमी धूल में लेटा हुआ था। उसकी बगल में एक छोटे से बालक को दूध पिलाती हुई स्त्री अति क्रोध-पूर्ण चेहरे से छोटी-सी गठरी खोल रही थी। उस गठरी की ओर आतुर नयनों से देख रहे तीन छोटे-बड़े बालकों में से दो रो रहे थे। गठरी खुलते ही दो बालकों ने उस पर झपट्टा मारा और उसमें से एक मोटी रोटी खींच निकाली। खींचा-तानी करने से रोटी टूट गई; दोनो बालकों के हाथ में उसका एक छोटा टुकड़ा रह गया और दूसरा बड़ा टुकड़ा जमीन पर धूल में गिर गया। बड़ी लड़की ने गिरा हुआ टुकड़ा झट से उठा लिया और उसकी धूल झाड़ डाली।

तीनों बालक-बालिका रोटी खाना शुरू करें उससे पहले ही उनकी मा ने पूरी ताकत से उनकी पीठ पर दो तीन धौल जमा दिये।

'तुम्हें रोऊँ, बाँटने से पहले ही मारा-मारी!'

मार-पीट से परिचित बालकों को, पीठ में पड़नेवाले प्रहार से कुछ अधिक दुःख नहीं हुआ। मार से बचने या उसके असर को कम करने के लिए पीठ टेढ़ी कर तीनों बालक रोटी के टुकड़े खाने लगे। झट से एक टुकड़ा खा, खाली हाथ पाँव पर मसलता हुआ एक बालक फिर से मचल उठा।

'अब तेरा क्या है? जो रोया तो मार ही डालूँगी।' मा ने कहा।

इतने में दूसरा बालक भी अपना हिस्सा खतम कर चुका। उसने स्वाश्रयी होने का निश्चय किया और बहिन के हाथ में से बड़ा टुकड़ा—धूलवाला—जिसे वह खा रही थी झपट लिया।

'ओ मा! ओ मा! देख न मरा...।' कहकर बहिन ने भाई के हाथ पर नाखून चुभाकर रोटी का टुकड़ा खींचना शुरू किया। एक टुकड़ा उसके हाथ में टूटकर आ गया।

'तू ने तो अधिक लिया था। मा! हमें भी बहिन के बराबर टुकड़ा दे।' कहकर वह बालक रोने लगा।

'अब भी रोटी चाहिये, क्यों ? ले ! ले ! ले !' कहकर मा ने उस बालक के गाल और पेट पर चिकोटी काटनी शुरी कर दी। वह बालक धरती पर लोट-लोटकर और जोर से रोने लगा।

मा ने लड़की पर गुस्सा निकालकर उसे भी एक धौल जमा दिया।

'मैंने क्या किया है जो मुझे मारती है ?' लड़की ने आपत्ति की।

मा की गोद में सुधुस पड़ा हुआ बच्चा भी पतली आवाज़ में रोने लगा !

'मरो, चूल्हे में जाओ सब। हटो यहाँ से।' मा ने शुभेच्छा प्रदर्शित की। सारे संसार पर—सारे जीवन पर—वह ऊब उठी थी।

पुरुष ने आँख खोलकर कहा :

'दे दे न टुकड़ा !' इतना कहकर उसने दूसरी ओर सिर फिरा लिया।

'लो, मरो !' कहकर मा ने आधी रोटी फिर बालकों को बाँट दी।

बालक अब जहाँ तक हो सके अपना-अपना टुकड़ा अधिक देर तक खाने का प्रयत्न कर रहे थे। पुरुष उठ बैठा। कपड़ों पर से धूल झाड़कर उसने कहा :

'ला, टुकड़ा मुझे दे।'

स्त्री ने बाकी बचा टुकड़ा पति को दे दिया। बालक पिता के सामने लोलुपता से देखते हुए अपना हिस्सा चाटने लगे। एक बालक बोल उठा :

'काका, अभी भूख नहीं मिटी।'

काका ने कुछ जवाब नहीं दिया। चुपचाप वह अपना टुकड़ा खा गया। स्त्री ने गठरी का कपड़ा झटक डाला। सर सुरेन्द्र सोचने लगे :

'उस स्त्री ने क्या खाया होगा ?'

थोड़ी देर बाद पहला बालक बोल उठा :

'मा, और कुछ नहीं है।'

'अब मुझे खाओ तो है!' मां ने कहा

पीछे एक कुत्ता बड़ी देर से पूँछ हिलाता हुआ खड़ा था। उस महान आशावादी प्राणी को एक टुकड़ा नहीं मिला; तो भी वह वहाँ से नहीं हटता था। वह पुरुष के अधिक समीप आकर पूछ हिलाने लगा। पुरुष ने बैठे-बैठे ही एक पत्थर उठाकर उसकी ओर फेंका।

'च्याऊँ-च्याऊँ' कर कुत्ता फिर वहीं आ बैठा।

जहाँ आदमी अपना ही पूरा नहीं कर सकता वह मूक पशुओं को क्या दे?

'अरेरे। ऐसी भूख होती है!' सर सुरेन्द्र को दया हो आई।

'ऐ! लेजा।' कहकर सर सुरेन्द्र ने खिड़की में से रुपया दिखलाया।

तीनों बालक दौड़ते हुए खिड़की के पास आये। सुरेन्द्र ने रुपया नीचे फेंक दिया। एक बालक ने उसे झट से उठा लिया।

पीछे से कुत्ते ने आकर जमीन सूँघी और सुरेन्द्र की ओर देखकर दुम हिलाने लगा।

मेरे और इन आदमियों के बीच कितना अधिक अन्तर पड़ गया है! मेरे मन्त्री हो जाने से इन लोगों को क्या! जिन गरीबों को भर पेट खाना नहीं मिलता, उन्हें सर सुरेन्द्र मन्त्री हो या और कुछ, इसकी क्या पर्वाह!'

उस यात्री परिवार ने रुपए को बहुत ही प्यार किया। उसे इस तरह रखने का प्रयत्न करने लगे मानो कोई भारी दौलत मिल गई हो।

'मेरा बालक, मेरा परिवार इस तरह तिलमिलाता हो तो!' सुरेन्द्र को खयाल आया। उसके साथ ही उसे याद आई कि उसके घर में तो बालक हैं ही नहीं। उसे बेहद असन्तोष हुआ, परन्तु उसने मन को समझाया:

मैं मंत्री हुआ तो सारी प्रजा मेरी बालक है।'

परन्तु उसके साथ ही साथ एक दूसरा प्रश्न उसे सूझा :

'जो राजा—जो प्रधान—या जो हाकिम अपने बालकों को भूखे रखकर खाता है उसे अपने पद पर से हटा क्यों न दिया जाय ! क्यों उसके बालक उसकी रोटी छीन न लें !'

उसका एक महीने का वेतन तो किसी ने छीन लिया था। दूसरे महीने का वेतन भी यदि ऐसा ही कोई भूखों मरता परिवार छीन ले तो उसमें क्या हानि है !

दूर से दीनानाथ आता हुआ दिखाई दिया।

२८

हाँ रे मने झेरी नागो ए डंख दीधा !
　　हो संत ! हावाँ के ये उतार शो ए झेर ?
हाँ रे मने घेरी सचोट वाग्ए वींध्याँ !
　　हो संत ! घाव उरना रुझावशो शी करे ?

—न्हानालाल

'क्या हुआ दीनानाथ ?'

'मैं सोचता था वही।'

'याने ?'

'आपके वेतन की रकम कोई ले गया।'

'बहुत अच्छी खबर लाये ! परन्तु तुम किसी को पकड़ सके या नहीं ?'

'पकड़ने में बहुत ही कठिनाई है। आज साँझ होने से पहले मैं आपको अपराधियों को दिखाऊँगा। आप कहेंगे तो फिर पकड़ने की तजवीज़ करूँगा।'

---

* मुझे विषैले सांपों ने डंक मारे हैं ओ संत, यह ज़हर कैसे उतारोगे ? मुझे विष-बुझे सचोट बाणों ने वेध दिया है, ओ संत हृदय के घाव कैसे रुझाओगे ?

'मेरे कहने की क्या ज़रूरत है ? अपराधी हो तो उसे पकड़ना ही चाहिये।'

दीनानाथ ने सर सुरेन्द्र को कुछ जवाब नहीं दिया। सुरेन्द्र ने वेतन जाने की हक़ीक़त पूछी। दीनानाथ ने कहा :

'टोली बहुत ही व्यवस्थित ढंग से काम करनेवाली है। किसी तरह का सबूत मिल नहीं सकता। मैं भी कल्पना ही करता हूँ, परन्तु प्रतिक्षण मेरा विश्वास होता जाता है कि वह कल्पना सच है।'

दीनानाथ ने सारी हक़ीक़त कह सुनाई। वह स्टेशन से सीधा दफ्तर को ही गया था। षड्यन्त्रकारियों ने सभी सम्भावनाओं का विचार कर बाजी जमाई थी। रेल-मार्ग से भी इस टोली ने सुरेन्द्र का पीछा करने की तजवीज़ की थी और वहाँ न जाकर यदि सुरेन्द्र दफ्तर में जाता तो वहाँ भी उसे लूटने का प्रबन्ध किया था। कॉलेज में थोड़े ही समय से विज्ञान के प्रफेसर पद पर नियुक्त हुआ महा बुद्धिशाली और विचक्षण पीयूष सुरेन्द्र से मिलने दफ्तर में आया।

'हाँ। मैंने उसे बुलाया था। विज्ञान का अध्ययन जन-प्रिय बनाने की एक योजना मैंने उससे माँगी थी।' सर सुरेन्द्र ने बीच में कहा।

'आप न मिले इसलिए वह आपके सहकारी के पास गया। थोड़ी देर पहले ही आपका और सहयोगी का वेतन आया था जिसे गिनकर सहकारी ने मेज पर एक ओर रख दिया था। पीयूष ने हँसकर पूछा :

' "मेरी योजना के लिए पैसे भी निकाल रखे हैं क्या ?" '

' "देखना प्रोफेसर, इस ओर नजर मत डालना ! निजी रकम है !"

' "आपका वेतन है ?"

' "मेरा और मेरे साहब का।"

'पीयूष ने इसके बाद अपनी योजना के बारे में बात की। बात

करते-करते प्रोफेसर पीयूष की आँखों में विचित्र परिवर्तन दिखाई दिया।

' "प्रोफेसर तुम कैसे हो रहे हो ?" सहकारी ने पूछा।

' "कुछ तो नहीं; जरा जागरण..." इतना कहकर उसने कुर्सी पर सिर डाल दिया। उतावली में सहकारी उसकी कुर्सी के पास जा उसे होश में लाने का प्रयत्न करने लगा; परन्तु कुछ कर सकने के पहले तो वह स्वयं भी बेहोश हो गया। थोड़ी देर में काम के कागज-पत्र लेकर एक चिटनवीस आया। उसे भीतर जाने देने की स्वीकृति लेने के लिए चपरासी ने दरवाजा खोला तो दोनो को ऐसी विचित्र हालत में पाया। उसने और चिटनवीस ने मिलकर आवाजें दीं। सब इकट्ठे हो गये। टेलीफोन कर तत्काल डाक्टर को बुलाया। उसी क्षण में वहाँ पहुँचा। पहले सहकारी होश में आया। होश में आते ही वह चिल्लाया:

' "मेज पर के नोट सँभालो।"

'और मेरा विश्वास हो गया कि नोट उड़ गये। मेज पर कुछ न था। प्रोफेसर धीरे-धीरे होश में आये और उनके कपड़ों की तलाशी भी मैंने ले ली। उपस्थित सभी व्यक्तियों को वहीं रोक मैंने उनकी तलाशी ली, परन्तु किसी के पास से कुछ न निकला। घबराये हुए सहकारी ने पीयूष की गवाही ली।

' "प्रोफेसर, आपके बेहोश होने से पहले नोट मेज पर थे या नहीं ?"

' "हाँ मैंने देखे थे।" पीयूष ने कहा।

'इतने में एक चपरासी दौड़ा आया और उसने एक बड़ा-सा कागज का लिफाफा सहकारी के हाथ में रख दिया। मैंने वह ले लिया। मुझे लगा कि उसमें षड्यन्त्रकारियों का ही कोई बुद्धिमत्ता-पूर्ण पत्र होगा। पत्र तो नहीं निकला; परन्तु उसमें कुछ नोट थे। गिनने पर सहकारी के वेतन की पूरी रकम वापिस लौट आई थी। मुझे ऐसा

निश्चित मालूम होता है कि पीयूष, चपरासी और दफ्तर का कोई आदमी इस षड्यन्त्र में सम्मिलित होने चाहिये।' दीनानाथ ने सारी घटना कह सुनाई।

'परन्तु पीयूष को तो मैंने ही बुलवाया था।'

'होगा। उससे मेरा सन्देह कम नहीं होता। आपकी आज्ञा पर सब कुछ निर्भर करेगा। साँझ को मैं आपको अपराधियों को दिखलाऊँगा।'

'यह तुम क्या कहा करते हो? अपराधियों को गिरफ्तार करने में मेरी आज्ञा की क्या आवश्यकता?'

दीनानाथ ने अर्थपूर्ण मुद्रा बनाई पर कुछ बोला नहीं। थोड़ी देर बाद सर सुरेन्द्र ने पूछा :

'अब मुझे क्या करना है? यहीं बैठ रहूँ, घर जाऊँ, या दफ्तर में हाजिरी दूँ?'

'आप घर या दफ्तर तो नहीं जा सकते। आपको ठीक जँचे तो किसी होटल में चलिये। हमें छिपना नहीं है; परन्तु घर या दफ्तर में पता नहीं लगना चाहिये कि आप यहीं हैं। दूसरी गाड़ी का समय हो गया है; ऐसा जाहिर करेंगे कि आप इससे गये हैं।'

सुरेन्द्र ने अपने प्राइवेट सेक्रेटरी को पास के कमरे में से बुलाकर कहा :

'तुम दफ्तर में जाओ। मैं अकेला ही इस गाड़ी से जाऊँगा। घर खबर करवा देना कि मैं इस समय गया हूँ।'

'कार ले जाता हूँ।'

'हाँ, परसों भेजना। यदि उससे पहले आया तो तार कर दूँगा।'

सेक्रेटरी गया। थोड़ी देर में गाड़ी आई। गाड़ी छूटने में समय था। सर सुरेन्द्र डिब्बे में बैठने गये। स्टेशन के बाहर रोटी के टुकड़ों के लिए झगड़नेवाले परिवार को गाड़ी में सवार होने के लिए घँस आते उन्होंने देखा। दो बालकों की भुजाएँ पकड़कर बाप खींच रहा

था। मा ने छोटा बच्चा और गठरियाँ ले रखी थी। लड़की मा का आँचल पकड़े पीछे-पीछे घिसटती आ रही थी। दीनानाथ के साथ बात-चीत करते समय यह भूला हुआ प्रसंग मंत्री को फिर से याद हो आया। जो भी सामने पड़ गया उस डिब्बे में जा घुसे उस परिवार के पास वह खड़ा हो गया।

बड़े आदमी ग़रीबों के साथ बात करके भी यश प्राप्त करते हैं। वे इतने अधिक बड़े होते हैं कि उनके और ग़रीबों के बीच होनेवाली बात एक बिलकुल ही नवीन घटना हो जाती है। एक राजा किसी थकी हुई बुढ़िया को बोझ उठवा दे ; कोई मंत्री किसी मज़दूर की बीमार स्त्री को एक दो फल दे; कोई लखपति अपने नौकर के बालक को बतियाये तो ये प्रसंग ऐतिहासिक हो जाते हैं। यदि कोई यह प्रश्न करे कि ऐसा क्यों होता है तो नीति-शास्त्र से इसका उत्तर नहीं मिल सकता। सत्ता, धन और संस्कार मनुष्य-जाति को कई जातियों और उपजातियों में विभक्त कर देते हैं। मनुष्य-जाति की भ्रातृ भावना उससे इतनी शिथिल हो जाती है कि ग़रीब और अमीर, पंडित और मूर्ख के बीच अस्पृश्यता उत्पन्न होकर उनके सहज स्पर्श को चमत्कारपूर्ण बना देती है। तालियाँ बजवानी, लेख लिखवाना या छपवाना हो तो कई बार बड़े आदमी मुँह नीचा कर, कृपा-दृष्टि से, धूल में लोटते किसी मानव बन्धु की ओर देखते हैं, और कभी उसकी धूल झाड़कर एकत्रित हुए लोगों की वाह-वाह प्राप्त कर, स्वयं को कृतकृत्य समझ फिर अपने महलों के सुख में समा जाते हैं। ग़रीबों से परिचित होने के लिए राज्य को ठोकर मार ग़रीबों के दुःख को अपनानेवाला गौतम बुद्ध जैसा राजा तो कोई एक ही निकलता है! ग़रीबों को दान देकर अभिमानी होनेवाले अमीर तो बहुत मिलेंगे ; परन्तु कम्बल के चुभनेवाले वस्त्र पहिन लकड़ी चीरने-वाला टॉल्स्टॉय जैसा उमरा तो शायद ही मिलेगा। ग़रीबों की तरफ़दारी में लेख लिखने या व्याख्यान देनेवाले विद्वानों की कमी नहीं

होने की ; परन्तु विद्या और संस्कार को ऊँचे आसन से उतार दरिद्रता के चरणों पर रख, गरीब का चिथड़ा देह से लिपटा, गरीब का रूखा-सूखा भोजन स्वीकार कर, गरीब के आँसुओं के साथ अपने आँसू मिलानेवाला महात्मा गान्धी तो शायद ही दीख पड़ेगा।

सबको आश्चर्यान्वित करते हुए सुरेन्द्र ने उस गरीब परिवार के पुरुष से पूछा :

'क्यों कहाँ जाता है ?'

'पेट की आग बुझाने, बाबू जी !'

'तू रहता कहाँ है ?'

'जहाँ रोटी मिले वहाँ।'

'इस शहर में रोटी नहीं मिली ?'

'शहर में हमारा पूरा कैसे पड़े ? न रहने को मिला, न खाने को मिला, न मजूरी मिली। यहाँ तो मर चले !'

शहर में आलीशान महल थे ; परन्तु इस ग़रीब परिवार को रहने के लिए बित्ता भर जगह नहीं मिलती थी। लाखों रुपए का व्यापार होता था, परन्तु चार-छः व्यक्तियों के इस परिवार को रोटी के टुकड़ों के लिए खींचातानी करनी पड़ती थी। शहरों के महलों और मीनारों के अनेकों वर्णन लिखे गये हैं ; परन्तु गरीबों के जीवन को कुचलने और नष्ट करनेवाले शहरों के काले पहलू को सब कोई भूल जाते हैं।

'तू जायेगा कहाँ ?'

उसने गाँव का नाम बताया। सुरेन्द्र ने पूछा :

'वहाँ रोटी मिलेगी ?'

'हाँ मालिक। थोड़ी जमीन मिलेगी उसे जोत खायेंगे।'

'ज़मीन कौन देगा ?'

'कोई आपके जैसा दाता मिल गया है।'

'नाम क्या ?' सुरेन्द्र ने पूछा। सुरेन्द्र को दान करने का शौक़ न

था। वह मानता था कि दान देने से दान लेनेवाले की अधोगति होती है। स्वपराक्रम से ऊँचा उठनेवाला मंत्री दूसरों में भी पराक्रम देखना चाहता था।

'नाम तो मालूम नहीं।'

सुरेन्द्र ने एक और रुपया उस गरीब के हाथ में रख दिया।

गाड़ी छूटने की तैयारी हुई। सर सुरेन्द्र और दीनानाथ एक डिब्बे में सवार हुए और तुरन्त चलती गाड़ी में से पिछले दर्वाजे की ओर उतर पड़े।

'लोग कितने गरीब होते हैं!' सुरेन्द्र के मुँह से निकल गया।

'वह जो गाड़ी में गया उसकी बात करते हैं?'

'हाँ।'

'अरे साहब, ऐसे आवारों पर दया दिखलाना अनावश्यक है। यह तो दो दो बार जेल काट आया है।' होशियार और दयालु समझे जानेवाले पुलिस अफसर दीनानाथ की दयावृत्ति भी नौकरी करते-करते नष्ट हो गई थी।

'तब तो तुम्हारे विभाग की उसपर निगरानी होगी ही।'

'है तो।'

'उसे जाने क्यों दिया? उसकी हाज़िरी लेते होंगे न?'

'वह जहाँ जाता है वहीं ठीक है।'

'वह कहाँ जाता है?'

'यहाँ से थोड़ी दूर पर स्थान है। वहाँ एक क्षेत्र में जेल से छूटे हुए अपराधियों को इकट्ठा कर उन्हें काम और रोजी दी जाती है, इसलिए एक ही स्थान पर निगरानी रखना सुविधा-जनक होता है।'

'वह संस्था सरकारी है?'

'जी नहीं! कोई व्यक्ति चक्रम जैसा है वह चलाता है। जिस टोली की हम तलाश में हैं उसका सम्बन्ध इस क्षेत्र के साथ है।'

'यह नहीं हो सकता। वह तो एक परोपकारी संस्था है और यह टोली तो लूट का धन्धा करती है।'

'परोपकार का दिखावा हो और चोरों को एकत्रित होने की सहूलियत मिले। और क्या?'

दोपहर का पूरा समय एक पुस्तकालय और एक यूरोपियन भोजनालय में बिताकर, सायंकाल के समय सुरेन्द्र और दीनानाथ एक बढ़िया किराये की मोटर लेकर घूमने निकले। मन्त्री का सारा दिन स्वप्न जैसी स्थिति में बीता था। दीनानाथ अधिक बात नहीं करता था। सुरेन्द्र का पद बहुत ही ऊँचा था। फिर बीच में वह दो-तीन बार मोटर लेकर घूम आया था।

'अब कहाँ की यात्रा कराओगे?'

'आपको अपराधी दिखलाने हैं, इसलिए उनके पीछे चलेंगे।'

'तुम्हारे अपराधी भले मालूम होते हैं। तुम्हारी इच्छानुसार घूमते हैं।'

बड़े आदमियों को मजाक करने का अधिकार है। दीनानाथ ने हँसी का जवाब नहीं दिया। वह जवाब दे ही नहीं सकता था।

गाड़ी शहर के एकांत हिस्से की ओर आई। दीनानाथ ने अपने आगे दूर पर दीखती हुई एक मोटर को ओर इशारा कर कहा :

'साहब, वह गाड़ी देखते हैं न?'

'दिखती तो है। हम हथियार से लैस हैं या नहीं?' दीनानाथ की गम्भीरता पर हँसते हुए सुरेन्द्र ने पूछा।

'हथियार? किसलिए?'

'क्यों? बिना हथियारों के गुप्त पुलिस की कहानियाँ लिखी जा सकती हैं? हम पिस्तौल की नली अड़ाकर बदमाशों के हाथ नहीं ऊँचे करवायेंगे?' सुरेन्द्र ने हँसते-हँसते कहा।

दीनानाथ को कुछ बुरा लगा। डिटेक्टिव—गुप्त पुलिस—की

काल्पनिक बातों का ढंग देखनेवाले सुरेन्द्र का काम तन तोड़कर करने की आवश्यकता है या नहीं, इसकी दीनानाथ को शंका हो आई।

'बड़े के काम में पड़ने से यह यश मिला!' दीनानाथ मन ही मन बोला। उसके विचार रुक गये, क्योंकि सुरेन्द्र एकाएक बोल उठा :

'अरे!'

'क्यों साहब, क्या हुआ?'

'यह किसकी गाड़ी है?'

'आप बराबर पहिचान लीजिये!...बस!'

'हाँ, यह तो ..!

'गाड़ी आगे बढ़ा, शोफर!' गाड़ी की गति बढ़ी। 'साहब, अब आप ज़रा ग़ौर से देख लीजियेगा कि इसमें कौन-कौन बैठे हैं!'

सुरेन्द्र ने गाड़ी का दर्वाजा जोर से पकड़ लिया। उसके चेहरे पर कालिमा छा गई। उसका हृदय जोर से धड़कने लगा। दोनो गाड़ियाँ साथ-साथ हो गईं। सुरेन्द्र ने बाईं ओर दृष्टि फिराई। दूसरी गाड़ी में बैठे हुए व्यक्तियों को पीछे से आने और बढ़नेवाली मोटर की जरा भर फिक्र न थी। सुरेन्द्र की आँखें विस्फारित हो गईं।

'दीनानाथ!'

'जी!'

'तुम्हारे अपराधी कौन-से हैं?

'साहब, आपने गाड़ी में किन्हें देखा?'

'क्या ये अपराधी हैं?'

'जी हाँ!' आपको बुरा तो नहीं लगा?'

'तुम्हारा भ्रम है। यह गाड़ी तो मेरी है। जिसमें मीनाक्षी बैठा करती है। और उसमें तो मीनाक्षी बैठी है।'

'दूसरा कौन था, उसे आप जानते हैं?'

'बहुत दिन बाद देखा। किरीट तो न था?'

'जी हाँ, वही था।'

'इन दोनों को तुम मेरा वेतन लूट ले जानेवाले सोचते हो?'

'सोचता नहीं, मेरा विश्वास ही है।'

सुरेन्द्र कुछ न बोला, परन्तु उसका हृदय तर्क-वितर्क कर रहा था।

'अब हमें घर चलना चाहिये। आगे आपके कथनानुसार किया जायगा।' दीनानाथ ने कहा और गाड़ी घर की ओर मुड़ाई।

एक भी शब्द बोले बिना दोनों सुरेन्द्र के बँगले पर पहुँचे। रात हो गई थी। दीनानाथ ने पूछा :

'क्या आज्ञा होती है, साहब?'

'कल कहूँगा!' सुरेन्द्र ने कहा। दीनानाथ जानता ही था कि अपराधियों की ऐसी पहिचान सर सुरेन्द्र को उलझन में डाल देगी। वह बिदा हुआ।

२६

जो इश्क ना तो शुं खुदा ?
आलम करी तो ये भले !
जो इश्क ना तो शुं जहाँ ?
एने खुदा ए शुं करे ? *

—कलापी

सर सुरेन्द्र की मनोदशा बहुत ही विचित्र हो गई। अपनी पत्नी चोर और डाकू बने ? यह सुनते ही किसी भी पुरुष को आघात पहुँचेगा कि नारी जाति ऐसे क्रूर काम में सम्मिलित है और जब अपनी ही पत्नी के लिए ऐसे कार्य का अन्देशा हो तो वह स्थिति सचमुच ही असह्य हो पड़ती है। परन्तु अपनी ही मिल्कियत अपनी पत्नी द्वारा लूटे जाने की खबर सुनकर पति का हृदय कैसा हो जाता होगा ?

मीनाक्षी को कमी किस बात की थी कि उसे पैसे लूटने पड़ें ! मीनाक्षी को किस वस्तु का अभाव हो गया था कि उसे अपने पति के विरुद्ध ऐसा काम करना पड़े ! सुरेन्द्र ने उसे अप्रसन्न होने का अपनी

---

* जो इश्क नहीं तो क्या खुदा ?
आलम करी तो भी भली !
जो इश्क नहीं तो क्या जहाँ ?
इसको खुदा भी क्या करे ?'

ओर से कोई भी मौका नहीं आने दिया था। वह सदा ही उसकी प्रतिष्ठा रखता था; आवश्यकता से अधिक सहूलियतें देता था; उसे बुरा लगे ऐसा कुछ भी नहीं करता था; उसका अपना चरित्र बहुत ही विशुद्ध था। किसी दूसरी स्त्री की ओर उसने कभी दृष्टि डाली ही नहीं थी। अरे, उसे मीनाक्षी की ओर ही देखने की कहाँ फुर्सत थी जो वह किसी अन्य स्त्री की ओर देखने जाता?

स्त्रियों की ओर देखने का विचार आते ही वह कुछ हँसा, परन्तु हँसते ही मीनाक्षी का चेहरा उसकी आँखों आगे आ खड़ा हुआ। ऐसा क्यों? मीनाक्षी क्यों रूठती है? उसे बुरा लगा है क्या? नहीं नहीं, वह ऐसा ही चेहरा बनाकर घूमती है। किस लिए? उसके चेहरे पर से हँसी विदा क्यों हो गई? उसकी आँखों का मद कहाँ उतर गया?

दरवाज़ा खुला। दर्वाजा खोलकर मीनाक्षी स्वयं ही भीतर आ रही थी। मीनाक्षी के चेहरे की प्रफुल्लता सुरेन्द्र को देखते ही मुर्झा गई। उसने चेहरा रुष्ट—असन्तुष्ट—बना लिया। सुरेन्द्र को खयाल आया कि मीनाक्षी का चेहरा दो भावों की झाँकी करा रहा था। एक किरीट की स्मृति की और दूसरी सुरेन्द्र को प्रत्यक्ष देखने की। किरीट की स्मृति में उसका चेहरा प्रफुल्लित रहता था; उसे देखकर प्रफुल्लित मुँह उतर जाता था! किरीट उसके धन को ही नहीं उसकी पत्नी को भी चुरा ले जा रहा था।

'मीनाक्षी, तू कहाँ थी अब तक? मैं आऊँ और तू न मिले यह मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता।'

'तुम तो जानेवाले थे न!'

सुरेन्द्र भूला। मीनाक्षी तो यही जानती थी कि वह जानेवाला है। क्या मीनाक्षी पर पहरा देने के लिए वह घर में रहा था?

बात कैसे शुरू की जाय? सर्वत्र विजयी होनेवाले प्रभावशाली

पुरुष को एकाएक जब यही दिखाई दे कि उसकी विजय को उसकी पत्नी ही स्वीकार नहीं करती तो उसकी सभी विजय भस्मसात् हो जाती हैं। सुरेन्द्र विजय से ही परिचित था। किरीट पर विजय प्राप्त करके ही उसने मीनाक्षी को पत्नी बनाया था। यह सच है कि किरीट पराजित हुआ; परन्तु क्या मीनाक्षी जीती जा सकी थी? क्या पत्नी को भी जीतना पड़ता है? सबको जीतने की सामर्थ्य रखनेवाले सुरेन्द्र को अपनी शक्ति के प्रति अविश्वास हो आया, परन्तु समर्थता एकदम हार नहीं मानती। सुरेन्द्र के आत्म-विश्वास ने उसके चेहरे पर कठिन गाम्भीर्य फैला दिया।

'परन्तु गया नहीं...मैं जाऊँ या नहीं, पर तुझे इतनी देर तक बाहर क्यों रहना चाहिये?'

'घर में रहकर मुझे क्या करना है?' मीनाक्षी ने पूछा। घर के कण-कण में पति की प्रति-छाया देखनेवाली, पति पर न्योछावर होने-वाली पत्नी का यह प्रश्न नहीं था।

'क्या?' सुरेन्द्र के विशाल ललाट पर टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ पड़ गईं; भौंहें अधिक गोल हो गईं; कुछ तिरछा नाक अधिक टेढ़ा हो गया। मीनाक्षी को पहली ही बार सुरेन्द्र से डर मालूम हुआ। सुरेन्द्र को आज तक अपनी पत्नी को धमकाने की भी फुर्सत नहीं मिली थी। आज तक कभी न सुनी हुई फटकार सुनकर मीनाक्षी ने सुरेन्द्र की ओर से आँख हटा ली और स्थिरता-पूर्वक बैठने का प्रयत्न किया।

'तुझे घर में अच्छा नहीं लगता, क्यों?' सुरेन्द्र ने वैसा ही डौल बनाये रखकर पूछा।

मीनाक्षी की आँख में चमक दिखाई दी। क्षण दो-क्षण बाद वह चमक पिघलकर गाल पर आ बही। गाल पर दो मोती टँग गये—गुलाब के खिले हुए फूल पर मानो दो ओसकण! एक ओर को देखती हुई मीनाक्षी के चेहरे पर सुरेन्द्र की दृष्टि स्थिर हो गई। उसे लगा कि

यह सौन्दर्य निहार रहा है ! सौन्दर्य-दर्शन सदैव ही हृदय को कोमल बनाता है ।

'मीनाक्षी !' सुरेन्द्र के कण्ठ में मार्दव था ।

मीनाक्षी ने सहज आँख घुमा, सुरेन्द्र की ओर देख, दृष्टि फिर हटा ली । आँखें अब भी भरी हुई थीं । मानो सफेद व काले संगमरमर के फर्श पर पारदर्शक पानी स्थिर हो गया हो ।

'इतने ही से रोना आता है ?'

मीनाक्षी ने रूमाल निकाला । उसके पहले ही सुरेन्द्र ने अपना हाथ मीनाक्षी के गाल पर फिराकर आँसू पोंछ डाले । उसे कितने ही दिनों से यह तो लगने ही लगा था कि पत्नी का चेहरा दर्शनीय है, परन्तु आज उसे अधिक स्पष्टतया समझ में आया कि यह चेहरा बारम्बार स्पर्श करने जैसा भी है । क्या आज तक उसने इस चेहरे को स्पर्श ही नहीं किया था ?

मीनाक्षी कुछ न बोली । सुरेन्द्र पत्नी में नित नूतन सौन्दर्य देख रहा था । मीनाक्षी को पास खींचकर उसने पूछा :

'यह तो ठीक है, परन्तु मैं अधिक क्रुद्ध होता तो ? किसी दिन पीटा होता तो ?'

मीनाक्षी का हृदय पुकार उठा :

'घड़ी-घड़ी लड़नेवाला पति होता तो वह अधिक निकट होता ! पीटनेवाला, दुनिया की आँखों में क्रूर पति होता तो भी वह उस पति का अधिक स्पर्श—उस पति की अधिक समीपता पा सकी होती ! यह फुरसत में मिलाप करनेवाला कोई पड़ोसी था !'

स्त्री सजीव पति माँगती है—पुतला नहीं । पति के जीवन में वह तल्लीनता चाहती है—जीवन के किन्हीं क्षणों की छवि मात्र नहीं । कलहपूर्ण परन्तु जाग्रत स्नेह की इच्छा करती है, नीरस सभ्यता या उदासीन स्वतंत्रता की नहीं ।

'मीनाक्षी, तुझे रुपयों की आवश्यकता है ?' दीनानाथ की बात याद आते ही सुरेन्द्र ने पूछा। धमकाकर मीनाक्षी से कुछ भी बात निकलवाना उसने असम्भव समझा।

'नहीं। मेरे पास कहाँ नहीं है ?'

'ऐसा नहीं। तुझे भी किसी को देना हो तो तू कह जितना चाहे उतना ं।'

पति की उदारता अमाप थी। उसने कभी मीनाक्षी को किसी बात के लिए मना नहीं किया था, परन्तु इस उदारता में मीनाक्षी को अलिप्तता दिखाई देती थी। उसे ऐसी वृत्ति का आभास मिलता था कि 'तुझे जो चाहिये ले और मुझे छोड़।' इसलिए पति की उदारता उसके लिए बहुत उपयोगी न थी। उसके पास भी कुछ कम साधन न थे।

'मुझे किसे देना है ?' मीनाक्षी ने कहा। पति प्रेमी का रूप खोकर पुलिस का सिपाही बन गया। वह घूर-घूरकर पत्नी को देखने लगा। उसके चेहरे पर अपराधी का चौकन्नापन नहीं दिखाई दिया।

यह तो तू खुद ही जान। मैंने सोचा कि तुझे रुपए की आवश्यकता है इसलिए पूछा।'

रोकर पति के पास से पैसा निकलवानेवाली स्त्रियों के साथ अपनी समानता किये जाने का भान होते ही मीनाक्षी जरा हटकर बैठी।

'आज किससे मिल आई ? देर तो यों ही हुई थी न ?' सुरेन्द्र ने इस ढंग से पूछा मानो कुछ जानता ही न हो।

मीनाक्षी को लगा कि आज उसकी परीक्षा ली जा रही है। अभी तक विनम्र बनी हुई पत्नी में स्फूर्ति आ गई।

'किरीटकान्त से मिल आई।'

ऐसी स्पष्ट—स्वच्छ स्वीकृति होती देख सुरेन्द्र चौंका। उसने सोचा था कि मीनाक्षी इस बात को स्वीकार करने में समय लगायेगी। पत्नी निर्दोष है ? या सामना करने के लिए ऐसी साफ बात कह रही है।

'किरीट से ? क्यों, किसलिए ?'

'यह क्या पूछते हो ? मैं तो कई बार उनसे मिल आया करती हूँ।'

'मिलने जैसा और कोई नहीं कि तुझे किरीट के घर जाना पड़े ?'

'मुझे तो दूसरा और कोई दिखाई नहीं देता।'

'कहाँ से दीखे ? इसलिए साथ-साथ मोटर में फिरती हो, क्यों ?'

'मुझे साथ ले जाना तुम्हें बुरा लगे तो फिर मुझे किसी की सोहबत तो ढूँढ़नी पड़ेगी न ?'

'सोहबत मिली किरीट की ?'

'वह क्या आज की है ? एक बार तुम्हीं उनकी सोहबत में रहते थे, आज क्या बाधा आ पड़ी ?'

'तू यह जानती है कि किरीट कैसे धन्धे करता है ?'

'मैं तो नहीं जानती, परन्तु यह नहीं सोचती कि उसके धन्धे में लज्जित होने-जैसा कुछ हो।'

'तेरे प्रमाणपत्र की आवश्यकता नहीं। एक भयंकर टोली का वह सर्दार है। उसे मेरे साथ वैर है इसलिए वह दो महीनों से मेरा वेतन लूट ले जाता है।'

'क्या आज भी वेतन गया ?'

'वेतन गया, पर उसके साथ अपराधी को पहिचान लिया। अब मेरी आज्ञा ही की देर है। मेरे कहते ही वह पकड़ लिया जायगा।

'किरीटकान्त किसलिए ऐसा करेंगे ?

'वह पहले से ही मेरा द्वेषी है। मेरी उत्कर्ष वह जरा भी नहीं सह सकता।'

'मुझसे किसी दिन ऐसी बात नहीं की।'

'इसलिए तू भी उसकी टोली में शरीक हो गई है, क्यों ?'

'मैं टोली में शामिल ?'

'पुलिस के पास सबूत इकट्ठे हुए हैं। अगर मेरी और अपनी

आबरू रखना हो तो किरीट को याद तक न करने का अभी से संकल्प कर ले।' सुरेन्द्र ने प्रसंग की भयंकरता कह सुनाई।

'सब ग़लत है। पुलिसवाले झूठे हैं।'

'और तू किरीट के साथ घूमती रहेगी, क्यों?'

'इतना ही नहीं, परन्तु एक दो महीने के लिए उनके साथ काश्मीर घूम आने का मैंने कार्यक्रम बनाया है।'

'सब बन्द रखना पड़ेगा।'

'किसलिए? तुम भी साथ चलो!'

'यहाँ का सब काम छोड़कर? मुझे सारे शिक्षा-विभाग का पुनर्निर्माण करना है।'

'तुम्हें पुनर्निर्माण करना हो तो करो। इस बीच मैं काश्मीर घूम आऊँ।'

'किरीट के साथ?'

'हाँ।'

'मेरे इतना कहने पर भी?'

मीनाक्षी बोली नहीं, परन्तु उसके चेहरे पर दृढ़ निश्चय दिखाई दिया।

'काश्मीर जाना तो ठीक है पर किरीट के साथ घूमना नहीं। मैं मना करता हूँ।' मीनाक्षी के चेहरे पर दृढ़ता देखकर सुरेन्द्र ने क्रोधित होकर कहा।'

'हुँः!' बेपर्वाही से उद्गार निकाल, सुरेन्द्र के सामने देखे बिना ही मीनाक्षी उठकर चल दी।

पुरुष और स्त्री के समान अधिकारों पर प्रभावशाली व्याख्यान देनेवाले मर सुरेन्द्र में आधमिक पुरुष जाग्रत हो उठा। सुरेन्द्र के हाथों की मुट्ठियाँ बँधी, दाँत पिसे, पाँव गतिशील हुए।

पुरुष के क्रोध से शेर-चीते डरते हैं; परन्तु स्त्री के मन पर उसका

कोई फल नहीं। स्त्री को अपनी सामर्थ्य में विश्वास है। स्त्री चाहे तो पुरुष को तपस्वी जैसा क्रोधरहित कर दे।

मीनाक्षी ने सुरेन्द्र के दाँतों का किटकिटाना सुना, परन्तु उसने जरा भी पीछे मुड़कर नहीं देखा और न अपनी चाल रोकी। आत्म-विश्वास पूर्वक दृढ़ता से चली जाती युवती के सिर से आँचल खिसक गया। सिर ढकने की भी उसने पर्वाह नहीं की। आधे सिर को ढकनेवाला, पुष्प-माला से लिपटा केश-विन्यास सौष्ठव-पूर्ण श्वेत लम्बी सुराहीदार गर्दन पर शोभा पा रहा था। अर्धनग्न पीठ पर तंग चोली पुष्ट अंगों की मोहकता को अधिक स्पष्ट करती शरीर से कसी हुई थी। दरवाजे के पास पहुँचते पहुँचते मीनाक्षी ने सिर से खिसके हुए आँचल को पिछले हाथ से खींचकर पाँव और कमर ढँक ली। दीपक के झिलमिलाते प्रकाश में कोई अपार्थिव दिव्यांगना आकर अदृश्य हो गई! सुरेन्द्र के अन्तर में जाग्रत हुआ प्राथमिक पुरुष स्तब्ध होकर मूर्छित हो गया। उसके स्थान पर कोई सौन्दर्यपूजक रसिक प्रकट हुआ। सुरेन्द्र के हाथों की मुट्ठियाँ खुल गईं। दंत-पंक्ति एक दूसरे से अलग हो गईं। पाँवों से गतिशीलता निकल गई।

सौन्दर्य कहने से केवल मुख-सौन्दर्य ही से मतलब नहीं है। सर्वतोभद्र सौन्दर्य; अंग प्रत्यंग का सौन्दर्य।

वह सौन्दर्य आज सुरेन्द्र को दीखा। सौन्दर्य को देखनेवाला या तो कवि बनता है या फिर प्रेमी! मीनाक्षी उसी की थी—उसकी पत्नी ही थी। फिर आज यह नवीन पिपासा कहाँ से जाग्रत हुई? सुरेन्द्र महापुरुष मिटकर केवल पुरुष बना! विश्व-विजयी वीर योद्धा मिटकर घायल प्रेमी बन गया।

वह मीनाक्षी के पीछे भागा। सौन्दर्योन्मत्त हो रहे मंत्री को उसके नौकर ने रोककर कहा :

'हुजूर, लाट साहब आपको टेलिफोन पर बुलाते हैं।

'जहन्नुम में जायँ तेरे साहब !' चिढ़कर मंत्रीजी बोले।

नौकर बेपर्वाह था। साहब के जहन्नुम में जाने से उसकी भी हानि नहीं थी।

'मैं क्या जवाब दूँ ?' उसने पूछा।

प्रेमी के पाँव पीछे हटे—गवर्नर से टेलीफोन पर मिले बिना छुटकारा न था।

'मैं कहाँ इस जंगल में आ फँसा !' पत्नी के पीछे दौड़ते हुए पति को आज मंत्रीपद जंजाल रूप लग रहा था।

३०

हतां राज्य ने पाट, महेल हता मन मानता ;
बनमां तीरथ घाट झुंपडलां ए ना जड्यां।
वीती वीतकनी वधाइयो। *

—न्हानालाल

शिक्षा-विभाग के नौकरों ने एक स्थान पर हड़ताल कर दी थी और ऐसी योजना करने की ज़रूरत थी कि वह हड़ताल दूसरे स्थानों में न फैले। घटना चिन्ता उपजानेवाली होने से गवर्नर ने उसी रात को अपने मंत्री सर सुरेन्द्र के साथ टेलीफोन पर बातचीत की। गवर्नर साहब की ऐसी इच्छा थी कि हो सके तो रात को ही सुरेन्द्र महत्त्वपूर्ण स्थानों के लिए रवाना हो जाय। एक घण्टा पहले यदि उन्होंने ऐसी इच्छा व्यक्त की होती तो कार्यदक्ष मंत्री उसी क्षण बाहर जाने के लिए निकल पड़ता, परन्तु इस समय उससे रवाना नहीं हुआ जा सकता था। उसका हृदय 'मीनाक्षी मीनाक्षी!' पुकार रहा था।

'मैं आवश्यक व्यवस्था करता हूँ।' ऐसा उड़ाऊ जवाब देकर सुरेन्द्र गवर्नर के पंजे से छूटा और व्यवस्था करने की बात भूल

---

* थे राज-पाट मनचीते महल भी ;
बन में तीर्थघाट झोंपड़ी भी न मिली।
बीती विगत की बधाइयाँ।

मीनाक्षी के कमरे की ओर गया।

'बाई साहिबा तो सो गई हैं।' एक दासी ने कहा।

'क्या इतनी जल्दी?'

'उनका सिर दर्द कर रहा था।'

'कुछ दवाई लगाई?'

'जी नहीं। दवाई के लिए मना किया है। मुझसे केवल यही देखते रहने के लिए कहा है कि कोई उन्हें जगाये नहीं।'

वापिस लौटना या मीनाक्षी के पास जाना इसका निर्णय करता हुआ सुरेन्द्र कुछ क्षण वहीं खड़ा रहा। मीनाक्षी से मिलने की तीव्र इच्छा होते हुए भी उसे जगाकर कष्ट देना सुरेन्द्र को ठीक न लगा। प्रेमी ने पहला ही स्वार्थ त्याग किया। वह अपने कमरे में लौटकर आ बैठा।

मीनाक्षी के शरीर की बारम्बार होनेवाली स्मृति को अटकाने के लिए सुरेन्द्र हड़ताल के प्रश्नों पर विचार करने लगा। कुछ समय हुआ शिक्षकों ने हड़ताल करने की धमकी दी थी। शिक्षाविभाग की ओर से शिक्षकों पर भरसक अत्याचार किया जाता था। शिक्षकों के लिए शिक्षण-शास्त्र का अध्ययन होना ही चाहिये; शास्त्र के सूत्रों की तरह उन्हें पढ़ाना आना चाहिये, विद्यार्थियों को पीटना या धमकाना तो छोड़ ही देना चाहिये, साथ ही वाणी और शरीर को इतना विकसित करना चाहिये कि इसका उन पर प्रभाव पड़ सके; पचास साठ विद्यार्थियों के वर्ग को नियन्त्रण-पूर्वक चलाकर प्रत्येक विद्यार्थी के पढ़ने-लिखने और चाल-चलन की उन्हें जवाबदारी लेनी चाहिये। सुख सहूलियत उठानेवाले उच्चाधिकारियों द्वारा यह तै किये जाने पर कि खानगी शिक्षक रखने से शिक्षक पक्षपाती और कक्षा में पढ़ाने के लिए अयोग्य हो जाते हैं, उन्हें खानगी शिक्षण से होनेवाली आमदनी का लोभ छोड़ देना चाहिये। हाँ, उच्चाधिकारियों को प्रसन्न रखने लिए उनके पीछे दौड़ने के उपरान्त उनके ठहरने, खाने की बढ़िया व्यवस्था कर, हो

सकें तो यह कहने की जरूरत नहीं कि उनके किराये के पैसे भी शिक्षकों को देने चाहियें। परन्तु यह तो नियमानुकूल ठहर चुका है कि बीस-तीस रुपए के वेतन में शिक्षकों को योग्यता का भण्डार, परोपकार की पराकाष्ठा, चरित्र की विशुद्धता और उच्चाधिकारियों को प्रसन्न रखने की पटुता दिखलानी ही चाहिये।

इस प्रश्न को छोड़ भी दिया जाय कि बीस रुपए के बदले शिक्षक से की जानेवाली आशाएँ पाँच सौ रुपए पानेवाला प्रोफेसर या पाँच हजार रुपए पानेवाला मन्त्री पूरी कर सकता है या नहीं, तो भी इतना तो निश्चित ही है कि कम वेतन से असन्तुष्ट हो शिक्षक अपने कर्त्तव्य को पूरा नहीं करते। ऊँचा वेतन पानेवाले अधिकारी अपने उदाहरण से यह समझकर कि अधिक वेतन देने से भी किसी को संतोष नहीं होता अपनी ऐसी मान्यता बना लेते हैं कि कम वेतन पानेवाले को संतुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। सुरेन्द्र के मन्त्री पद पर आने से पहले ही शिक्षकों और उनके अधिकारियों के बीच मतभेद चला आ रहा था। सुरेन्द्र को पूर्ण आशा थी कि झगड़ा मिटाकर वह यशस्वी बनेगा। इसलिए वह आन्दोलनवाले स्थानों पर जाने को था। इस बारे में उसने सूचना भी दी थी, परन्तु उसका जाना स्थगित हो जाने के कारण हड़ताल शुरू हो गई।

'जिस-तिस में किरीट ही है! शिक्षकों को उत्तेजित करने में भी उसी का नेतृत्व! कितने कटु लेख लिखता है!' सुरेन्द्र को खयाल आया। 'गरीब की हाय' में शिक्षकों का व्यक्तिगत परिवार और उनकी आमदनी बतलाकर यह साबित किया गया था कि उन्हें भरपेट खाने को भी नहीं मिलता है।

यह लेख याद आते ही दोपहर में गाड़ी पर मिले हुए चोर के परिवार की उसे याद हो आई।

'सच, दुनिया में ग़रीबी तो बहुत ही है।' उसे विचार आया।

'परन्तु ग़रीब क्या बने रहने के ही योग्य नहीं है? जिसकी जैसी योग्यता होती है उसको वैसा मिलता है। अधिक देने से क्या वे अधिक सुखी हो जायँगे!' साधन-सम्पन्नों को यही शंका होती है। उन्होंने ग़रीबों को अधिक देकर अधिक सुखी बनाने का कभी प्रयोग नहीं किया; क्योंकि उन्हें यह विश्वास नहीं कि अधिक सुख भोगने की शक्ति ग़रीबों में हो सकती है।

धनिकों के पास धन न होता तो कारीगरों को रोजी कहाँ से मिलती! धनिकों की उदारता अद्‌भुत है। कारीगरों को रोजी मिलने के उद्देश्य से ही वे धन इकट्ठा करते हैं!'

'मान लो कि मैं चार कुर्सियाँ कम कर दूँ तो उससे क्या होगा? यह क्यों भूल जाना चाहिये कि इन कुर्सियों की बनावट में लकड़ी बेचनेवाले को, लुहार को, कुर्सी का नक्शा बनानेवाले को, उस नक्शे के अनुसार कुर्सी गढ़नेवाले को, कुर्सी पर रंग लगानेवाले को, कुर्सी उठा लानेवाले मज़दूर को, कुर्सी का बिल बनानेवाले मुनीम को और उस बिल का पैसा उगाहनेवाले नौकर को रोजी मिलती है?'

धीरे-धीरे वे यह भी साबित कर सकेंगे कि उनकी चार कुर्सियों की बनावट पर ही सारी दुनिया के काम करनेवालों का तंत्र चलता है। परन्तु वह बुद्धिमान मंत्री इतनी-सी बात सोच न सका कि उन चार कुर्सियों को बनवाये बिना ही यदि उसने उतना ही पैसा काम करनेवालों को अधिक दिया होता तो वे उस परिश्रम से बचकर दूसरी चार कुर्सियाँ तैयार कर उनके पैसे अधिकता में पाते।

परन्तु वह अधिक विचारकर सकने की दशा में था ही नहीं। सारे दिन की दौड़-धूप के बाद उसे नींद आने लगी थी। एक कुर्सी पर से उठकर वह दूसरी आराम कुर्सी पर लेट गया और वहीं सो गया।

जाग्रति में पड़े हुए संस्कारों को मन नींद में किसी दूसरे ही ढंग

से देखता है। मानो कोई दूसरी ही दुनिया की बात न हो! स्थल और काल के भेद स्वप्न में जुदे ही स्वरूप धारण करते हैं। स्वप्न में घटनाओं की रचना ऐसी हो जाती है कि मानो बीती बातें अभी बीतने की हों और बीतनेवाली बीत चुकी हों। सर सुरेन्द्र स्वप्न देखने लगे।

उनके हाथ में एक समाचार-पत्र था। उसमें बड़े-बड़े अक्षरों में यह शीर्षक छपा था :

'मंत्री-पत्नी द्वारा पति के विरुद्ध बिछाया हुआ जाल!'

'यह समाचार कैसे फूट निकला! मेरे और दीनानाथ के सिवाय तीसरा तो कोई जानता ही नहीं। फिर यह क्या!'

जिस फजीहत का डर था वह तो हुई ही। कीर्ति-कांक्षी मंत्री की कीर्ति में यह भयंकर कालिमा थी। सुरेन्द्र इतनी व्यग्रता का अनुभव करने लगा जितना उसने अपने सारे जीवन में कभी नहीं की थी।

'इस पत्र का प्रचार कम है। यदि पत्र बाहर रवाना किया गया हो तो रोकने के लिए संचालक को लिखा जाय।'

दूसरे पत्र में कुछ भी समाचार न आये होंगे, इस आशा में उसने दूसरा पत्र खोला। उसमें पहले से भी अधिक स्पष्ट समाचार लिखे थे :

> हमें विश्वस्त-सूत्र से पता चला है कि हमारे युवक, लोक-प्रिय और कुशल मंत्री सर सुरेन्द्र के वेतन सम्बन्धी लूट का भंडाफोड़ उनकी पत्नी मीनाक्षी द्वारा होने की सम्भावना है? वह बदमाशों की टोली में कैसे फँसी इस पर अभी पूरी तरह से प्रकाश नहीं पड़ सका है।

सुरेंद्र ने पत्र नीचे फेंका।

'प्रकाश डालना है। वह तो पड़ चुका! अब तो इस्तीफा दिये बिना छुटकारा नहीं! आज से मेरा पतन हुआ!'

एकाएक दीनानाथ दौड़ता हुआ आया और भरी हुई साँस से कहने लगा :

'साहब ! साहब !'

'क्या है ?'

'बड़ी कठिनाई आ खड़ी हुई !'

'तुम कैसे आदमी हो ? फिर क्या समाचार लाये हो ?'

लेडी मीनाक्षी किरीटकांत के साथ आज भाग रही हैं ।'

'क्या ?' सर सुरेन्द्र खड़े होकर आश्चर्य प्रकट किया : 'तुम कैसे समाचार लाया करते हो !'

'साहब, इसमें मैं क्या करूँ ?'

'तुमसे कुछ भी नहीं हो सकता । तुम पुलिस-विभाग के लिए एकदम आयोग्य हो । मैं तुम्हें निकलवा दूँगा ।'

'परन्तु मुझ गरीब का कोई अपराध ?'

'पहला तो यही कि तुम गरीब हो । दूसरा यह कि तुम अपराधों को रोक नहीं सकते ।'

'साहब, आप हुक्म दें तो मैं दोनो को गिरफ़्तार करूँ, परन्तु फिर मुझे अपराध रोजनामचे में चढ़ाना पड़ेगा । आपकी पत्नी को फुसलाकर भगा ले जाने का आरोप...'

'बस, बस, आगे मत बोलना ।' जिस ढंग से ओछे आदमियों के लिए बात की जाती है उस ढंग से अपने और अपनी पत्नी के बारे में होती हुई बात को सह न सकने के कारण सर सुरेन्द्र ने पुलिस अधिकारी को बोलने से रोका ।

पुलिस विभाग में कवित्वमय शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाता । कभी किया भी जाता हो तो वे पुलिस थाने से बाहर जाने देने जैसे नहीं होते । पुलिस के यहाँ कोई भी पुरुष 'मर्द' है, उसकी पत्नी 'औरत' है, स्नेह की महान भावना 'फुसलाने' की तरकीब है ? सभ्यता का, साक्षरता का, संस्कारशील भाषा का जिस-जिस को गर्व हो उसे पुलिस की भाषा से परिचित कराना चाहिये ।

'तो अब मैं जाऊँ ?'

'वे लोग भागकर कहाँ जा रहे हैं ?'

'यह तो पता नहीं चला। अफवाह से यह जाना गया है, कि वे काश्मीर भाग जायँगे ?'

'हम रोक नहीं सकेंगे ?'

'खुले मैदान निकल जायँ...'

'तुम बहुत ही असभ्य हो सभ्यता से बात करो।'

'जी हाँ।'

'हम किस तरह से रोक सकते हैं ?'

'स्त्री पर कब्जा करने का दावा...'

'नहीं नहीं ! किस गाड़ी जायँगे ?'

'अभी ही। गाड़ी छूटने में दस मिनट की देर है।

'चलो, चलो, मेरे साथ।'

सर सुरेन्द्र और दीनानाथ भागे। नीचे मोटर खड़ी थी उसमें बैठ गये और हुक्म दिया :

'स्टेशन पर। जल्दी।'

मोटर तुरन्त स्टेशन पर पहुँच गई। जैसे ही दोनो आदमी प्लेट-फार्म पर गये कि गाड़ी चल पड़ी। एक डिब्बे की खिड़की में मीनाक्षी का फूल भरा केश-विन्यास दीख पड़ा। सर सुरेन्द्र गाड़ी पकड़ने के लिए दौड़े। अन्तिम डिब्बे के समीप पहुँचकर जैसे ही उन्होंने दरवाज़े पर हाथ रखा। गाड़ी जोर से आगे बढ़ गई। सुरेन्द्र का हाथ झटका खाकर छूट गया, गाड़ी चली गई थी।

सुरेन्द्र की आँखें खुल गई।

'मीनाक्षी गई ?'

वह घबराकर उठ बैठा, उसके हाथों में झिनझनी चढ़ गई। उसकी समझ में नहीं आया कि वह कहाँ है ? गाड़ी कहाँ ? दीनानाथ कहाँ ?

यह सजा हुआ कमरा शायद वेटिंग रूम तो नहीं !

टन् ! टन् !

दो बजे। घड़ी उसकी परिचित थी—उसी की तो नहीं ? सामने प्रकाश में उसकी तसवीर दीख रही थी। दूसरी ओर देखते ही मीनाक्षी की तसवीर दिखाई दी।

'अरे ! मैं तो घर में ही हूँ। मीनाक्षी का जाना जो मैंने देखा क्या वह झूठ है ?'

वह दौड़ा और मीनाक्षी के सोने के कमरे में पहुँच गया। पाण्डुर प्रकाश से भरे हुए कमरे का वातावरण शांत, स्वप्निल था। एक पलंग पर मीनाक्षी बाईं करवट लेटी हुई थी। तकिये पर कुछ पुष्प बिखरे पड़े थे। मीनाक्षी का लम्बा, सुडौल शरीर एक आच्छादन के नीचे था। केवल मुँह आवरणहीन था। मानो प्रकाश के समुद्र में तैरता हुआ चाँद थककर आँखें मूँदे विश्राम कर रहा हो।

मनुष्य को चूमा जा सकता है : चंद्र का कहीं चुम्बन किया जा सकता है ? सुरेन्द्र के पास सोई हुई चंद्रमुखी, चाँद जैसी ही लुभावनी, परंतु चंद्र के समान ही दूर लगी। चाँद को छू नहीं सकते तो उसकी किरणों से ही संतुष्ट होना पड़ता है। सुरेन्द्र मीनाक्षी की ओर देखता ही रहा। वह उसके मुँह को छू न सका। क्या स्पर्श करने की आवश्यकता थी ?

प्रांत का मंत्री पद ऊँचा था मीनाक्षी के चन्द्रमुख की प्राप्ति ? वह रुक न सका। पास पड़ी हुई कुर्सी पलंग के पास ला, उस पर बैठ, सोई हुई मीनाक्षी से उसने पूछा :

'मीनाक्षी !'

मीनाक्षी ने आँखें खोलीं। रेशम के पर्दे से ढँके हुए तारे झिलमिला उठे।

'तू मुझे छोड़ जायगी ?'

'नहीं। किसने कहा?' इतना कह उसने फिर आँखें मूँद लीं।

सुरेन्द्र ने अधिक नहीं पूछा। मीनाक्षी के बड़े तकिये पर थोड़ी जगह थी। कुर्सी पर बैठे-बैठे उसने पलंग पर दोनो हाथ रख तकिये पर अपना सिर धर दिया।

मीनाक्षी का आच्छादित हाथ बाहर निकला और सुरेन्द्र के मस्तक पर एक क्षण फिरकर वहीं स्थिर हो गया। सुरेन्द्र को गहरी नींद आ गई। मीनाक्षी के नींद भरे चेहरे पर मुसकराहट खिलकर अदृश्य हो गई।

मीनाक्षी के मन में उस समय कौन था?

सुरेन्द्र? या किरीट?

३१

दृगबाण थी प्रारब्ध लेख लख्यो,
कंई प्रेमी ए प्रेमपंथी परख्यो ;
अने आत्मा ए आत्मन ने ओळख्यो,
रस ज्योत निहाळी नमुं हुं नमुं. *

—न्हानालाल

प्रभात होते ही मीनाक्षी की आँख खुल गई, उसके हाथ को बालों की चिकनाई का स्पर्श हुआ। उसने चौंककर हाथ खींच लिया और देखा कि कुर्सी पर बैठा उसके तकिये पर सिर धरे सुरेन्द्र सो रहा है।

शरीर और वस्त्र समेटकर वह उठ बैठी। सुरेन्द्र अभी सो ही रहा था।

'बेचारे इस तरह सो रहे!' उसके मन में दया हो आई।

उसने सिर पर हाथ फिराकर सुरेन्द्र को जगाया।

'ऐसे क्यों सो रहे हो! शरीर दर्द करने लगेगा।'

'भले ही दर्द करे!' सुरेन्द्र ने तकिये पर से सिर हटाये बिना ही कहा।

---

* कठोर बाण से प्रारब्ध लेख लिख गया ; प्रेमी ने प्रेमी को परखा और आत्मा ने आत्मा को पहिचाना। मैं प्रेम-ज्योति देखकर नमस्कार करता हूँ।

'तो ठीक से सो जाओ न उस पलंग में !'

सुरेन्द्र ने सिर उठा लिया। उसका हृदय कसक उठा :

'मुझे निकालती क्यों है ?' अत्यन्त दयनीय आवाज़ में उसने पूछा।

'यह कैसे कहते हो ?' मीनाक्षी को दया आई। वह समझ गई कि सुरेन्द्र को उसने अपने पलंग पर विश्राम करने के लिए नहीं कहा इसीलिए उसका यह प्रश्न उपस्थित हुआ है। फिर भी उसने उलटा प्रश्न किया। उसे जवाब देने की सुरेन्द्र ने आवश्यकता न समझी। वह थोड़ी देर तक मीनाक्षी को देखता रहा। रात के अपार्थिव वातावरण में देखी हुई मीनाक्षी अधिक स्पष्ट—अधिक सत्य हो गई थी। दीपक के म्लान प्रकाश में, सारे कमरे में बिखरी हुई मीनाक्षी, सुरेन्द्र को लगा कि, अपना सौन्दर्य समेटकर अधिक घनीभूत हो गई है। रात को छुई नहीं जा सकती थी वह तेजोमूर्ति इस समय शरीर-धारिणी बन गई थी। सुरेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ा। मन्त्री पद के तमगे की अपेक्षा वह हाथ अधिक कमनीय था। उसने कहा :

'मीनाक्षी !'

मीनाक्षी ने सुरेन्द्र की ओर देखा। वह लगातार उसके चेहरे की ओर देख रहा था। मीनाक्षी लजाकर इधर-उधर नजर घुमा रही थी। विवाहित जीवन के प्रारम्भिक दिन उसे याद आ रहे थे। अपना नाम सुनकर उसने सुरेन्द्र की ओर देखा :

'तू मुझे छोड़ जायेगी ?'

'कहाँ ?' कल की बात वह भूल गई थी।

'काश्मीर !'

'पर तुम तो आओगे नहीं !'

'क्यों ?'

'अपना काम छोड़कर आओगे ?'

'हाँ ।'

'गवर्नर साहब छुट्टी देंगे ?'

'नहीं देंगे तो इस्तीफ़ा दे दूँगा और तेरे साथ चलूँगा ।'

मीनाक्षी सुरेन्द्र के सामने देखती रह गई । वह सुरेन्द्र के मन की बात जानने का प्रयत्न कर रही थी । मन्त्री-पद छोड़कर सुरेन्द्र कभी उसके साथ आयेगा ? दस वर्ष का परिचय तो कुछ और ही बतलाता था ।

'साहब, दीनानाथ आये हैं ।' एक नौकर ने प्रवेश कर खबर दी ।

'यह पाप पीछा ही नहीं छोड़ता ।' सुरेन्द्र ने खिन्नता प्रकट की ।

'तुम्हीं तो उसे बुलाते हो !'

'क्या करूँ ? दो बार से मेरा वेतन लुट रहा है ।'

'और वह मैं लूट ले जाती हूँ ऐसी इसने खोज की है, क्यों है न ?' कुछ हँसकर मीनाक्षी ने कहा ।

सुरेन्द्र फिर उद्विग्न हो गया । मीनाक्षी एक समय किरीट को चाहती थी । किरीट की मा की बीमारी ने यदि उसकी परीक्षा में बाधा न डाली होती तो अवश्य ही वह प्रथम आता और मीनाक्षी उसी के साथ विवाह करती । सुरेन्द्र क्यों बीच में पड़ा ।

'मैं बीच में पड़ा ? या किरीट ?' अपने मन में ही उसने पूछा ।

'और परस्पर एक दूसरे के योग्य कौन ? मैं और मीनाक्षी ही न ?' सुरेन्द्र के स्वाभिमान ने पूछा ।

'परन्तु यह तो मेरा अभिमान है । यदि मैं योग्य होता तो इतने वर्षों बाद मीनाक्षी किरीट को खोजती ?'

उसने मीनाक्षी की ओर देखा ।

'किस सोच में पड़े हो ?'

सुरेन्द्र थोड़ा सामने देखकर बोला :

'कहूँ ?...नहीं, नहीं । कुछ भी नहीं ।'

'वाह ! यह भी हो सकता है ? कहने जा रहे थे न ?' और कोई प्रसंग होता तो मीनाक्षी इतना भी आग्रह नहीं करती।' परन्तु उसके सिर पर आरोप रखे जाने के बाद उसके मस्तिष्क में नई चंचलता आ गई थी, इसलिए उसने आग्रह किया।

'मैंने तुझे कल पूछा था। याद है ?'

'कल तो तुमने मुझे बहुत कुछ पूछा।' जरा बुरा लग जाने का बहाना करते हुए मीनाक्षी ने कहा।

सुरेन्द्र दुःखित हुआ। मीनाक्षी कहीं चोर हो सकती है ? क्यों वह शंकित हुआ ?

परन्तु किरीट का सम्बन्ध वह किस तरह भूल सके ? पहले मीनाक्षी उसी को चाहती थी न ? वह पुराना भाव जाग्रत क्यों नहीं हो सकता ? इसीलिए तो मीनाक्षी उसे नहीं चाहती हो !

'मीनाक्षी, मैं तुझे अच्छा नहीं लगता, क्यों सच है न ?' सुरेन्द्र ने पूछा। यह प्रश्न उसने चौबीस घण्टे में दूसरी बार पूछा।

मीनाक्षी क्या जवाब दे ? सुरेन्द्र किसी भी सुन्दरी के नयनों को आकर्षित कर सकता था। अकेला रूप होता तो साल दो साल में रोजमर्रा की बात होकर अनाकर्षक हो उठता, परन्तु सुरेन्द्र विद्या-संपन्न था। रूप और विद्या दोनो हों और धन न हो तो पत्नी नोन-तेल की हाय-तोबा में दोनो को भूल जाय। सुरेन्द्र के सम्बन्ध में ऐसा न था। वह न केवल धनी घर का बेटा था परन्तु उसने खुद भी काफी पैसा पैदा किया था। रूप, विद्या और श्री संपन्न पति सत्ताहीन हो तो उसमें खामी हो सकती है। सुरेन्द्र तो सारे प्रान्त का मन्त्री था। फिर मीनाक्षी यह कैसे कह सकती थी कि वह उसे अच्छा नहीं लगता ?

और फिर यह स्वीकार करते हुए कि पति से उसका दिल उठ गया है एक हिन्दू पत्नी का मन कैसा होता ? यह प्रगट होने के पहले कि पति के साथ उसकी अनबन है, पत्नी के हृदय में जाने कितनी

मानसिक उथल-पुथल हो रहती है। तो फिर उस सत्य को मान्य रखते हुए हृदय का अस्तित्व भी कैसे रहे? यह दिखावा है, झूठ है, फिर भी परापूर्व के संस्कार हैं।

'ऐसा क्यों कहते हो!' मीनाक्षी ने आँखों में अनिच्छा प्रदर्शित करते हुए कहा।

'तेरे किरीट के पास से मैंने तुझे छीन लिया है, सच है न?'

सुरेन्द्र की वाणी में कटाक्ष न था, कटुता न थी, विष न था; उसकी वाणी में सत्य था, पश्चात्ताप था, दया की भिक्षा थी।

'दीनानाथ को कब तक बैठाये रखना है!'

सुरेन्द्र का प्रश्न सत्य पर असह्य था। मीनाक्षी के हृदय में सौ-सौ शूल चुभ गये। इस वार्तालाप को बन्द करने के लिए उसने दीनानाथ की याद दिलाई।

'मुझे उत्तर नहीं दिया! दीनानाथ से मुझे कुछ भी काम नहीं है।' सुरेन्द्र ने कहा।

मीनाक्षी का मुँह संकुचित हो गया। उसके नेत्र स्थिर हो गये। उसके हाथों में कुछ संज्ञा-हीनता हो आई। साँस लेने में उसका दम घुटने लगा। सुरेन्द्र की समझ में कुछ न आया।

'मीनाक्षी, मीनाक्षी, क्या होता है?'

उसका सारा शरीर संज्ञा-हीन-सा हो गया। वह पलंग पर गिर पड़ी। उसकी आँखें मुँद गईं। उसने एक हाथ से सुरेन्द्र का हाथ मज़बूती से पकड़ लिया।

सुरेन्द्र घबरा गया। उसने एक हाथ से मीनाक्षी की आँखें दबा दीं। किसी और को आवाज़ तक देने की उसे सुध न रही।

'मीनाक्षी, बोलती क्यों नहीं? ज़रा बोल न!'

मीनाक्षी स्वस्थ हुई। उसकी साँस नियमित चलने लगी। उद्विग्न सुरेन्द्र आँख की ओर देख रहा था। आँख खुले तो समझ में आये

कि मीनाक्षी को होश आया है।

सुरेन्द्र ने धीरे-धीरे मीनाक्षी के सिर और कपाल पर हाथ फिराना शुरू किया।

मीनाक्षी, मीनाक्षी, अब कैसी है?' सुरेन्द्र मीनाक्षी के नाम का सतत उच्चारण कर कोई न कोई प्रश्न इस तरह से पूछता रहा मानो वह उसके नाम की माला ही जपता हो।

'मीनाक्षी, ज़रा आँख तो खोल।'

मीनाक्षी ने आँख खोली। घबराया हुआ सुरेन्द्र बोल उठा :

'मीना! मीना! अब आँख न बन्द करना, मुझसे नहीं देखा जाता।' सुरेन्द्र के चेहरे पर और वाणी में अतिशय विकलता थी। मानो यह समझ में न आता हो कि क्या करना और क्या बोलना चाहिये। इस तरह अस्थिर होकर वह हाथ और मुँह की विचित्र चेष्टायें कर रहा था।

आँख खुलने के बाद मीनाक्षी धीरे-धीरे होश में आने लगी। सुरेन्द्र मीनाक्षी के चेहरे को इस तरह देख रहा था मानो इस प्रयत्न में हो कि वह चैतन्य फिर से नष्ट न हो जाय। मीनाक्षी अपने पति की चिन्ता और आतुरता देखती रही।

'साहब, दीनानाथ अन्दर आना चाहते हैं।' एक नौकर ने फिर आकर कहा।

'उनसे कह दो कि कुछ काम नहीं है। अभी मैं मिल नहीं सकूँगा।'

'ऐसा कहीं हो सकता है? उन्हें बुलाया है तो मिल तो लो!' मीनाक्षी ने धीमे धीमे कहा।

'तेरी मर्जी हो तो मैं अवश्य बुलाऊँ। पर तू सो रह। कुछ बोलना मत।' इतना कहकर दीनानाथ को बुलाने की आज्ञा नौकर को दी।

मीनाक्षी ने उठने का प्रयत्न किया।

'नहीं, नहीं, नहीं। तू जरा भी मत हिलना।'

तो भी मीनाक्षी उठ बैठी। सुरेन्द्र ने मीनाक्षी को इतनी सावधानी से उठकर बैठने में मदद दी जितनी सावधानी से कोई काँच के पुतले को उठाता है।

मीनाक्षी हँसी: 'ऐसा क्या है? मुझे तो कुछ नहीं हुआ।'

दीनानाथ ने भीतर आकर सलाम की और खड़ा हो गया।

'क्या आज्ञा है, साहब?'

'तुम स्वयं जाकर किरीटकान्त को यहाँ बुला लाओ।'

मीनाक्षी चौंकी। दीनानाथ को भी थोड़ा आश्चर्य हुआ।

'आप चिट्ठी लिख दें तो?' दीनानाथ ने कहा।

'तुम्हारे कहने से नहीं आयेगा? ठीक; मैं चिट्ठी लिखता हूँ।'

सुरेन्द्र ने काग़ज़ मँगा, चिट्ठी लिख दीनानाथ को दी। दीनानाथ ने जाते-जाते मीनाक्षी की ओर देखा। मीनाक्षी का शरीर ढीला दिखाई दे रहा था।

'मंत्री ने कहीं पीटा तो नहीं?' दीनानाथ को मन में शंका हुई।

'बाई साहब की तबियत कैसी है?' उसने पूछा।

'अच्छी नहीं है।' सुरेन्द्र ने कहा।

दीनानाथ गया। थोड़ी देर मौन रहने के बाद मीनाक्षी बोली:

'किरीटकान्त को क्यों बुलाते हो?'

'तेरी तबियत अच्छी नहीं। तू काश्मीर हो आ। किरीट के साथ समय तै कर लिया जाय।'

'तुम नहीं आओगे?'

'नहीं।'

मीनाक्षी सुरेन्द्र की ओर देखती रह गई। पति-पत्नी ने सुबह की चाय एक दूसरे के पास ही बैठकर, उसी कमरे में पी।



३२

जीववुं जीव लेइने आंही एवी दीसे रीति !
कोई ने दुःख देवाथी तृप्ति केम हशे थती ? *

—कलापी

किरीट को प्रसन्नता होनी चाहिए थी मीनाक्षी उसे ढूँढ़ती हुई उसके पीछे आई थी। इतना ही नहीं, किरीट जहाँ जाना चाहे, वहाँ उसके साथ जाने के लिए वह तैयार हुई थी। सुरेन्द्र ने उसे जो ताने मारे थे, उसका जो अपमान किया था, उन सबका बदला आसानी से लिया जा सकता था। उसका विश्वास हो गया था कि सुरेन्द्र ने उसके साथ भयंकर प्रपंच रचा था। किरीट की यह मान्यता दृढ़ हो चुकी थी कि सुरेन्द्र ने पहले ही से अपने मुनीम द्वारा मंगला की तबीयत के बारे में तार कर किरीट को परीक्षा में से बुलाने की योजना बना रखी थी। किरीट से भी ऊँचे क्रम पर आकर उसने मीनाक्षी की शर्त पूरी की थी।

'दो में से जो प्रथम आयेगा मैं उसे पसन्द करूँगी।' मीनाक्षी की अपने माता-पिता के आगे कही हुई यह बात सभी जानते थे।

इतना कह चुकने पर भी मीनाक्षी किरीट ही को पसन्द करती,

---

* जीना जी लेकर यहाँ ऐसी दिखती रीति !
क्यों तृप्ति होती होगी किसी को दुःख देने से ?

परन्तु उसकी मा का भयंकर रोग मीनाक्षी को डरा रहा था। उसके माता-पिता ने इस रोग का भय युक्तिपूर्ण ढंग से इतना अधिक बढ़ा दिया था कि उसने किरीट को भुलाने का निश्चय कर लिया।

'अरे रे! मैं कैसी स्वार्थी हूँ कि प्राण-भय से तुम्हें छोड़ दिया!' कल ही मीनाक्षी ने किरीट के आगे कहा था।

परन्तु उसने तो उलटा किरीट ही को दोष दिया। कैसी विचित्र दलील थी!

'मैंने तो मना किया था, परन्तु तुम भगा क्यों नहीं ले गये?' मीनाक्षी ने किरीट को दोष देते हुए कल पूछा था।

यह कैसे हो सकता है? बीसवीं शताब्दी में स्त्रियों को भगा ले जाने की मध्य-युगीन प्रथा कैसे दुहराई जा सकती है?

'विवाह के दिन तुम्हें जाते हुए देखकर मेरा तो यही विश्वास हुआ कि तुम किसी भी तरह मुझे भगा ले जाओगे, परन्तु तुम तो दस वर्ष बाद भी नहीं दिखाई दिये।'

मीनाक्षी के शब्दों को किरीट रट रहा था। कल मोटर में और मोटर से बाहर एकान्त में घूमते हुए मौन किरीट को मीनाक्षी ने पूर्व-जीवन की कई स्मृतियाँ कराई थीं।

'और अभी भी भगा ले जाओ तो मैं आवाज़ तक न निकालूँ।' मीनाक्षी ने रोमांचित करनेवाला प्रस्ताव भी किया।

इसमें बुरा क्या है? जिस क्षण विवाह निरर्थक लगे उसी क्षण उसे तोड़ देने में सत्यता है या निरर्थक हो गये विवाह-बन्धन को झूठ-मूठ के लिए बनाये रखने में सत्यता है? पश्चिम में विवाह-बन्धन की शिथिलता के कारण क्या वहाँ की प्रजा सचमुच अधिक दुःखी हो गई है? और उसने रूस में क्या देखा था? विवाह करने में कितनी सहूलियत है। किस लिए इस बन्धन को अधिक कठोर बनाया जाय? मीनाक्षी को सुरेन्द्र के साथ अच्छा न लगे तो उसे किरीट के साथ चले

जाने की सहूलियत क्यों न होनी चाहिये !

यों किरीट को प्रसन्न होना चाहिये था, परन्तु उसका हृदय तो भारी ही हो गया था।

'अब उठोगे ! मीनाक्षी का ध्यान बहुत हुआ।' चमेली ने गहरे विचारों में पड़े हुए किरीट से कहा। सबेरा हो गया था।

'तुझे किसने कहा कि मैं मीनाक्षी का ध्यान करता हूँ !' किरीट ने उठते-उठते पूछा।

'तुम्हारे चेहरे ने कहा।'

'कैसे !'

'जब-जब तुम्हें मीनाक्षी के विचार आते हैं, मैं तुम्हारे चेहरे पर से ही भाँप जाती हूँ।'

हृदय की बात जाननेवाली है ! Thought reader !

'तो खाओ मेरी सौगन्ध, और कहो कि तुम मीनाक्षी के बारे में विचार नहीं करते थे।'

'न भाई ! तेरी सौगन्ध खाऊँ तो पीयूष और मधुकर मार डालेंगे।'

'बात उड़ा देते हो हर बार ! पर याद रखना। रोज साथ फिरते हो, किसी दिन वह तुम्हें उड़ा न ले जाय।'

'वह मुझे उड़ा ले जाय ? या मैं उसे उड़ा ले जाऊँ !'

'यह तो जैसी जिसकी योग्यता। पर हाँ, नीचे चार-पाँच आदमी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'हाँ हाँ, मैं भूला, परन्तु चमेली तू मुझ से कहना कि इन चार-पाँच आदमियों में सबसे ज्यादा चालाक कौन है। जा बुला सब को।'

'मुझे किसी की चालाकी से क्या करना है !' कहकर चमेली गई और नीचे से पाँच आदमियों को बुला लाई। पाँचों नवयुवक एक दूसरे से अधिक खूबसूरत और अधिक चालाक लगते थे। चमेली ने उन्हें बैठाया। मधुकर चमेली को देखने में व्यस्त था।

वे सब कभी-कभी किरीट से मिलने आते थे, परन्तु पाँचों एक साथ मिलने आज ही आये थे।

'चमेली, आज इन सभी को यहीं भोजन कराना है।'

'अच्छा।' कहकर चमेली अन्दर चली गई।

'पीयूष के पीछे तो पुलिस पड़ी है।' राजेन्द्र ने कहा।

'और तेरे पीछे कहाँ नहीं है?' पीयूष ने भी खबर दी।

'किस लिए?' कुञ्ज ने पूछा।

'जिस समय मन्त्री का वेतन लुटा पीयूष कमरे में था; राजेन्द्र पीयूष का मित्र और सेक्रेटरियट में नौकर है, इसलिए पुलिस द्वारा शंका की जानी स्वाभाविक ही है।' किरीट ने समझाया।

'सबूत होगा तो पकड़ेंगे; और क्या?' राजेन्द्र ने हँसकर कहा।

'परन्तु मेरे पिता बहुत ही व्यग्र हैं। उन्हें ऐसा लगता रहता है मैं जेल जाऊँगा और नौकरी जाएगी।' पीयूष ने कहा।

'अपने पिता को मेरे पास भेजना?'

किरीट ने अपने आसपास कई होशियार और चंचल युवकों को इकट्ठा किया था। दरिद्रता के अन्याय व अपमान सहकर उसे समाज के प्रति ऐसा भयंकर बैर उत्पन्न हो गया था कि वर्तमान समाज को उखाड़ फेंकने के लिए वह सतत प्रयत्न-शील रहता था। उसे अनेकों विचित्र अनुभव प्राप्त हुए थे। कहा जाता है कि पृथ्वी शेषनाग के आधार पर टिकी हुई है। उसे शेषनाग तो मिला नहीं; परंतु उससे भी अधिक भयंकर साँप से लिपटी हुई एक भयानक रमणीयता पर यह पृथ्वी आधारभूत दिखाई दी। उसे विश्वास हो गया कि पृथ्वी का पाया पैसे पर टिका हुआ है। व्यावहारिकता के बीच घुसे हुए इस नागचूड़ का जीवन के सम्पूर्ण व्यवहार पर अधिकार दिखाई दिया। उसे पूरी तरह से विश्वास हो गया कि यह नागचूड़ जड़ वस्तु को तो खरीदता ही है; परन्तु साथ ही मानव देह, मानव बुद्धि और मनुष्य

की भावनाओं को भी खरीद सकती है। और सबसे अधिक आश्चर्य तो यह कि संसार का नियंत्रण करनेवाली सत्ता—ईश्वर—को भी यह अपने जाल में फँसाने का प्रयत्न करती है। लक्ष्मी इसीलिए तो कहीं ईश्वर के यहाँ निवास न करती हो?

इस सर्वशक्तिमान पैसे का स्वरूप बदले, एक ही स्थान पर जमा होने की इसकी आदत दूर हो, तभी गरीब बच सकते हैं। परन्तु इसका स्वरूप बदला कैसे जाय? व्यावहारिक लेन-देन में दलाली करता हुआ पैसा दलाल मिटकर दाता कैसे बने? एक ही स्थान पर ढेर होने के बदले, राजमहलों और इमारतों के तहखानों में जमा होने के बदले, कौन-सी शक्ति द्वारा उसे मजदूरों की अँधेरी कोठरियों और किसानों की खुली झोपड़ियों में भटकनेवाला बनाया जाय?

किरीट को इसी के स्वप्न आते थे। उसने बहुत पढ़ा और बहुत विचार किया था। एक बात स्पष्टतया उसकी समझ में आती गई: जब तक वह गरीब रहेगा तभी तक गरीबों की लड़ाई लड़ सकेगा। जितने अंश में वह गरीबी त्याग देगा उतने ही अंशों में उसका गरीबों का प्रतिनिधित्व करने का हक नष्ट हो जायगा। वह गरीब बना रहा और गरीबों में हिल-मिल गया।

उसे दूसरी बात भी समझ में आई। बुद्धिमान हो जानेवाला गरीब गरीबों का दुश्मन बन जाता है। गरीबी मनुष्य को इतना कायर बना देती है कि वह अपनी स्थिति बदलने का प्रयत्न कर ही नहीं सकता। जिसमें परिस्थितियों को बदलने जितना बल होता है वह गरीबी को मिटाने का प्रयत्न करता है। ऐसे बुद्धिशाली या शक्तिशाली गरीबों को उच्चवर्ग के सुखी मनुष्य खरीद लेते हैं और वे गरीबों के शत्रुओं की छावनियों में भर्ती हो जाते हैं। इसलिए गरीबों में जो बुद्धिमान या शक्तिमान हों उन्हें गरीबों के पक्ष में ही रखना चाहिये।

फिर धनिकों का द्रव्य-बल राज्यों और समाजों को भी अपने

अधिकार में रखता है। एक गरीब की माँग उसके गले से बाहर नहीं निकल सकती ; जब कि धनिक अपने किराये के विद्वानों द्वारा अपनी माँगों को समाचार-पत्रों, सभाओं और राज्याधिकारियों द्वारा पूरी करवाने का सफल प्रयत्न करते हैं। एक गँवई ढेड़ को धौल मारकर उससे मजूरी कराई जा सकती है। एक मिल मालिक को क्यों नहीं पकड़ा जा सकता ? क्योंकि ढेड़ की पुकार सुनने का किसी को भी अवकाश नहीं है, परन्तु मिल-मालिक की आवाज़ में सारा देश अपनी आवाज़ मिला देता है। गरीबों की आवाज बराबर सुनाई दे इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे साधन गरीबों के पास होने चाहिये।

ऐसे विचारों के कारण उसने स्वयं ही ग़रीबी स्वीकार नहीं की, परन्तु ग़रीबों में दिखाई पड़ते बुद्धिमानों और शक्तिमानों को धनवान होने से बचाकर उन्हें ग़रीबों के ही पक्ष में रखा। इस बुद्धिशाली संघ को किरीट ने इतना सजीव बना दिया कि सारे भारत भर में गरीबों के दुःख को समझने, और समझकर उसे दूर करने के लिए कई छोटे-बड़े मंडल स्थापित हुए। इन मंडलों के द्वारा हिन्दुस्तान के दरिद्र-वर्ग में काफी जाग्रति आने लगी। कौन गरीब, कितने गरीब, ग़रीबों के अधिकार क्या, उन अधिकारों की प्राप्ति में विरोधी कौन, उन विरोधियों का विरोध मिटाने के लिए किन उपायों को काम में लाया जाय : इस संबंध में व्याख्यान, चित्र, पत्र, कथा आदि द्वारा ग़रीबों को आत्मभान कराने का सबल प्रयत्न होता था। इनमें किरीट कहाँ था यह ठीक से किसी की समझ में नहीं आता था। वह संस्थाएँ और उनके संचालक खड़े कर खुद दूसरी जगह चल देता था और दूसरी जगह ऐसी संस्थाएँ खड़ी कर तीसरी जगह चल देता था उसके कामों में एक विचित्र प्रकार की गूढ़ता और रहस्यमयता रहती थी। वह जहाँ जाता पुलिस उस पर निगाह रखा ही करती और धनिकों के विरुद्ध जहाँ-जहाँ अपराध होते थे वहाँ किरीट का संबंध

स्थापित करने के लिए ललचाती थी।

किरीट खुले आम ऐसे अपघारों का बचाव करता था। अपने विरुद्ध कोई भी सबूत न मिल सकने से वह बेधड़क अपने लेख लिखता था। खासकर चोरी के अपराधों के बारे में—वह सदा कुछ न कुछ ऐसी बात कहता था जिससे जनता और उस पर शासन करनेवालों का खास तौर से ध्यान आकर्षित हो। जिसकी चोरी होती थी उसे तो किरीट के लेख अतिशय कड़वे लगते थे। धीरे-धीरे ऐसी मान्यता चारों ओर फैल गई कि योग्य चोरों की टोली द्वारा किरीट धनवानों को लूटने का व्यवसाय करता है।

किरीट को इस बात की जानकारी थी। सुनकर वह विषैली हँसी हँसता था। उसके हँसने में यह मर्म प्रकट होता था कि इससे अधिक लूट क्यों नहीं होती है? किरीट ने अपने मित्रों को कल की लूट में सम्मिलित चुना। पीयूष और गजेन्द्र के तो पुलिस ने बयान भी लिये थे इसलिए किरीट ने उन्हें बुलाया था।

किरीट की टोली में केवल बुद्धिमान गरीब ही नहीं थे, धनिकों और सत्ताधारियों के युवक लड़के उसकी लेखनशैली और दलीलों की नवीनता से आकर्षित हो उसके कार्य में सम्मिलित होते थे। पीयूष, गजेन्द्र, मधुकर, कुञ्ज, अश्विन आदि युवक इसी पंक्ति में आते थे, परन्तु उनका काम इतना संगीन था कि ग़रीबों के आन्दोलन में उनके बिना काफ़ी हानि होती।

पीयूष ने तो विज्ञान के आविष्कारों द्वारा गरीबों की गरीबी दूर करने का काम अपने जिम्मे लिया था। परन्तु विज्ञान की शोध तो दूर रही उल्टे पुलिस की शोध में उसी पर शक किया गया।

किरीट को दूसरी बातें भी करनी थीं। मध्य एशिया में होनेवाली विप्लववादियों की एक सभा में सम्मिलित होने का उसे विशेष रूप से निमन्त्रण मिला था। काश्मीर होकर उसे जाना था और

इसलिए अपने काम-काज का प्रबन्ध करना था।

बात आगे बढ़ने से पहले ही नीचे किसी ने किवाड़ खटखटाये :

'कुञ्ज, देखना तो कौन है ?'

कुञ्ज नीचे जाकर पुलिस अफ़सर दीनानाथ को ले आया। पीयूष और राजेन्द्र दोनों कुछ म्लान पड़ गये। दीनानाथ ने उन्हें और उनके सगे-सम्बन्धियों को बहुत ही धमकाया था।

'क्यों दीनानाथजी, पधारिये!' किरीट ने कहा। उसकी आँख में चमक आ गई और वह क्षण भर दीनानाथ की ओर ताककर देखने लगा।

'यह चिट्ठी है।' दीनानाथ ने कहा।

'वारण्ट तो नहीं है ?'

'शायद इन भाई के नाम निकले।' पीयूष की ओर इंगित कर दीनानाथ ने कहा।

'हर्ज नहीं। इसने अभी तक झोपड़ियाँ नहीं देखी हैं। देखेगा तो फिर झोपड़ियाँ देखनी बाकी नहीं रहेंगी...चिट्ठी किसकी है ?'

'सर सुरेन्द्र की।'

दीनानाथ की ओर देखकर किरीट खूब हँसा। उसकी हँसी में सभी को भाव की विकरालता दीख पड़ी। दीनानाथ ने भी नजर हटा ली।

किरीट ने चिट्ठी पढ़कर फाड़ डाली।

'कहना कि उन्हें काम हो तो मेरे पास आयें। मुझे काम होगा तो उनके पास जाऊँगा।'

'जवाब लिख देंगे ?'

'जी नहीं, आप मुँहजबानी ही कह दीजिएगा।'

'बाई साहब की तबियत ठीक न होने से स्वयं न आ सके हों।'

'कौन-सी बाई साहब ?'

'लेडी मीनाक्षी।'

किरीट के चेहरे पर से क्रूरता गायब हो गई। उसके चेहरे पर से ऐसा भास होता था मानो उसे सर सुरेन्द्र के घर जाने की इच्छा हो आई है, परन्तु उसने कहा :

'लेडी मीनाक्षी ने तो मुझे नहीं बुलाया ?'

'नहीं।'

'तो फिर मेरे आने की आवश्यकता नहीं !'

दीनानाथ उठकर वहाँ से चला गया। किरीट शिष्टाचार की खातिर उठकर उसके साथ नीचे तक गया। वह जब वापिस आया तो उसके चेहरे पर हँसी थी। दूसरे कमरे की खिड़की में से देखती हुई चमेली ने भी वह हँसी देखी। उसे ऐसा लगा कि पुलिस अफसर दीनानाथ भी हँस ही रहे थे।

'हास्य में इतनी अधिक क्रूरता कैसी ?' चमेली मन में ही बोली।

३३

क्यां चाहवुं ते दिल मात्र जाणे,
तेमां न कांई बनतुं पराणे ;
त्यां बुद्धिना जोरती कें न कारी,
बुद्धितणो मार्ग जुदोज कांई. *

—कलापी

गरीबी के दुःख आँखों देख, स्वयं भुगत, अन्यायों के विरुद्ध झूमनेवाले किरीट को एक अन्याय सतत सालता रहता था। उसकी गरीबी के कारण ही उसके प्रेम का विध्वंस किया गया था। उसे भूखों मारा होता, शिक्षा प्राप्त करने से रोका होता तो भी उसे इतना अधिक दुःख न होता, परन्तु जब वह ग़रीबी को फाँद जाने के प्रयत्न में था, अरे, ग़रीबी की दीवार को लगभग कूद ही गया था कि उसी क्षण उसकी पूर्वकालीन दरिद्रता को जिसे समाज भूल न सका था, आगे कर उसके प्रेम में विघ्न डाला गया। ग़रीब और अमीर का पारस्परिक भेद निर्मूल हुए बिना स्नेह-मार्ग सरल कैसे हो सकता है!

लड़ाई के लिए तत्पर मनुष्य की वैर-भावना उसकी लड़ाई को

* यह केवल दिल ही जानता है कि किससे प्रेम किया जाय, इसमें जबर्दस्ती नहीं चल सकती; वहाँ बुद्धि का जोर भी नहीं चलता, बुद्धि का मार्ग तो जुदा ही है।

रसमय—लड़ने योग्य बना देती है। शरीर और मन की लड़ाई को वैर-हीन भूमिका पर स्थापित करनेवाले महात्माओं ने संसार के सामने सत्य का आग्रह रखा है। इस युद्ध का भूमिका-भेद संसार स्वीकार करेगा ही; परन्तु उसे स्वीकार करने से पहले मानव हृदय में स्थित वैररूपी राक्षस, अपना स्थान छोड़ने से पहले, यदि अनेकों संघर्ष करे तो कोई आश्चर्य नहीं। मीनाक्षी को सुरेन्द्र के पास से छीने बिना किरीट के हृदय की वैराग्नि शांत नहीं हो सकती थी। ग़रीबों की लड़ाई लड़ने में, उसे ऐसा लगता था कि प्रत्येक विजय उसे मीनाक्षी के समीप पहुँचाती है। कभी उसे ऐसी शंका भी होती थी कि आया वह ग़रीबों के लिए जूझता है या मीनाक्षी को प्राप्त करने के लिए। धीरे-धीरे ये दोनो प्रश्न एक ही हो गये। दोनो के मूल में एक ही बात थी।

परन्तु जब मीनाक्षी को वापिस प्राप्त करने का प्रसंग आ उपस्थित हुआ तो उसे ज़रा भी आनन्द न हुआ। उसकी वैर-वृत्ति न जाने कहाँ अदृश्य हो गई। किरीट के स्थान पर यदि कोई असंस्कारी और अशिक्षित व्यक्ति होता तो वह बरजोरी मीनाक्षी के शरीर का स्पर्श कर संतोष प्राप्त करता, परन्तु ऐसा करने से किरीट को सन्तोष नहीं हो सकता था। मीनाक्षी स्वयं आती तभी इस ग़रीब संस्कारी के वैर का बदला मिलता। पहली ही बार उसकी समझ में आया कि संस्कार वैर का बदला लेने के तरीकों में भी काफी परिवर्तन कर देता है। एक नया सत्य उसकी समझ में आया कि ग़रीबों को न केवल पोषण का अपितु, संस्कार प्राप्ति का अधिकार भी होना चाहिये, परन्तु मीनाक्षी जब स्वयं उसके पास आई तो उसकी वैर-वृत्ति नष्ट हो गई, उसका खेद बढ़ गया और उसे ज़रा भी प्रसन्नता न हुई।

एक तरह से उसे लगा कि अभी गरीब तो गरीब ही बने हुए हैं और इसलिए उसका लक्ष्य अप्राप्य ही रहा है। पैसों से प्राप्त होनेवाले प्रत्येक सुख गरीबों को लभ्य हो सकें इसलिए धन-संग्रह को ही असंभव

बना देना चाहिये। जब तक यह निश्चित नहीं हो जाता कि धन-संग्रह नियमानुसार अपराध और सामाजिक दृष्टि से पाप है, संसार में गरीबी मिट नहीं सकती।

मीनाक्षी मिले तो गरीबों को भटकते हुए कैसे रोका जाय? गरीबी मिटाने के लिए उसने बहुत से प्रयत्न किये थे, कई संस्थाएँ स्थापित की थीं और कार्यकर्ताओं को संगठित किया था। अभी तक ऐसी व्यवस्था न हो सकी थी कि शासनसूत्र गरीबों के हाथ में आता और ग़रीबों के लिए उपयोगी होता। भारत परतंत्र था; विदेशी हुकूमत, फौज और विदेशी व्यापार भारत पर असह्य बोझ हो रहे थे। इस बोझ को कम करने के लिए जब-जब प्रयत्न किये जाते, सुधारों के नाम पर, चीख-पुकार मचानेवाले नेताओं को, रुपए की थैलियों और अधिकारों के दिखावे से चुप कर दिया जाता था। किरीट की समझ में यह न आता था कि प्रत्येक प्रान्त में भारतीय मंत्री के बहाने और धारा-सभा के सदस्यों के भत्ते और दौरे में वृद्धि करने से ग़रीबी में कौन-सी कमी हुई थी? वर्तमान शासन-प्रणाली का वह इसी लिए शत्रु हो गया था। मंत्रियों की वह बुरी तरह से खबर लेता था और सर सुरेन्द्र को नीचा दिखाने में उसके दो हेतु सिद्ध होते थे: गरीबों की लड़ाई आगे बढ़ाना और मीनाक्षी छीन ले जानेवाले धनिक से बैर का बदला लेना।

कीर्ति-कांक्षी सुरेन्द्र से असन्तुष्ट मीनाक्षी अपनी पुरानी कजलाई हुई प्रेम चिनगारी को फूंक-फूंककर प्रज्वलित कर रही थी। इसी बीच किरीट से उसकी मुलाकात हो गई, परन्तु मनुष्य के संस्कार इतने सबल होते हैं कि वे उसके विकारों को पवित्र बना देते हैं। संस्कार-हीनता में मनुष्य अपनी वृत्तियों के वशीभूत रहता है। दो संस्कारहीन व्यक्ति मिलें तो वे अपने विकारों पर अंकुश नहीं रख सकते। एक संस्कारी व्यक्ति यदि असंस्कृत व्यक्ति के संपर्क में आता है तो भी उसके संस्कार लुप्त हो जाते हैं, परन्तु जब दोनों व्यक्ति संस्कृत हों तो

पशु हो जाना बहुत कठिन है। कहीं दो संस्कृत व्यक्तियों में से एक स्त्री और दूसरा पुरुष हुआ तो उनके संस्कार उन्हें देवता बनने का प्रयत्न करते हैं। किरीट की समझ में आया कि उसका बैर सुरेन्द्र से है, मीनाक्षी से नहीं। मीनाक्षी तो अब भी, पहले जैसी ही, परी है। किरीट बेचैन हो गया। मीनाक्षी की मुलाकात के डर से वह भागने लगा और जब मीनाक्षी ने उसे सचमुच ही पकड़ लिया तो उसे लगा कि मीनाक्षी से मिलने के लिए तरसनेवाली उसकी देह को कोई भावना अपूर्व बल से पीछे खींच रही है।

उसे मध्य एशिया में जाने का निमंत्रण मिला था। उससे लाभ उठा, इस भयंकर मानसिक बेचैनी से उद्धार पाने के लिए उसने काश्मीर जाने का कार्यक्रम सोचा, परन्तु मीनाक्षी ने उसके साथ ही काश्मीर जाने की इच्छा प्रदर्शित की। वह मना भी कैसे करता? और हाँ भी कैसे करता? मीनाक्षी के लिए तो वह छटपटाता था। मीनाक्षी के प्राप्त होने पर उसके हृदय में कौन-सा भय आ घुसा?

उसका मन शान्ति के लिए व्यग्र हो उठा। उसने अपने युवक साथियों को काम बाँटने के लिए बुलाया। आज सारा दिन वे उसी के यहाँ रहनेवाले थे। बीच में दीनानाथ सुरेन्द्र की चिट्ठी ले आया परन्तु किरीट ने उस चिट्ठी की पर्वाह न की। दीनानाथ को बिदाकर किरीट जब वापिस लौटा तो चमेली ने उसके चेहरे पर एक क्रूर हँसी देखी। वही हँसी उसके मित्रों ने भी देखी। सब इस हँसी को पहचान रहे थे। सभी की आँखों में प्रश्न था। किरीट कुछ न बोला। मधुकर ने पूछा:

'कुछ जानने जैसा है?'

'हाँ।'

'क्या?'

'प्रत्येक प्रांत के मंत्रियों का वेतन लूटा गया!'

'अच्छा !' आश्चर्य से स्तब्ध होकर युवक बोल उठे।

'तार आया है ?' कुंज ने पूछा।

'नहीं। दीनानाथ ने कहा है।' किरीट ने उत्तर दिया।

'पुलिस का आदमी तुम्हें कहेगा !'

'पुलिसवालों और अपराधियों की एक खास सीमा तक मैत्री होती है। उनके मन में मैं न केवल अपराधी हूँ, अपितु इस पहली तारीख वाली घटना के लिए जवाबदार भी हूँ।'

सबने एक दूसरे की ओर अर्थ-पूर्ण दृष्टि डाली।

'फिर ?' एक ने पूछा।

'फिर कुछ नहीं। कुछ मन्त्री घर बैठें तो ठीक। देश पर इतना बोझ कम होगा।'

सभी को उसने लिखित सूचनाओं के साथ कुछ नक़शे भी दिये। सूचनाओं में कोई खास महत्व न था। प्रचलित कहावतें और सूत्र उनमें थे, परन्तु सब कोई उन्हें ऐसी गम्भीरता से पढ़ गये मानो उनमें कोई रहस्यमय अर्थ छिपा हो। नक़शों को मिलाने पर जहाँ कहीं शंका उपस्थित हुई उन्होंने किरीट से उसका समाधान करवा लिया।

तीसरे पहर सभी चले गये। किरीट ने चमेली से कहा :

'चमेली, तेरे पिता की तबियत अब बिलकुल ठीक हो गई।'

'सच ? तुम से किसने कहा ?' प्रसन्न होकर चमेली ने पूछा।

'मैं खबर लेता रहता हूँ।'

'यहाँ आयेंगे न ?'

'वह यहाँ आयेंगे ? या तुझे उनके पास जाना चाहिये ?'

'मैं यहाँ से कहीं नहीं जाने की। उन्हें लिख दो कि यहाँ आकर मुझसे मिल जायँ।' रुष्ट चेहरा बनाकर चमेली ने कहा। वह समझी कि किरीटकांत उसे फिर कहीं भेज देने की तजवीज कर रहा है। उसे बुरा लगा।

'ठीक है। तेरे विवाह में उन्हें यहाँ बुलाएँगे।'

'किसका विवाह?'

'तेरा। और किसका?'

'बस वही बात! मज़ाक भी दूसरी नहीं आती।'

'मैं जरा भी मज़ाक नहीं करता।'

'मज़ाक नहीं तो और क्या?'

'तू मुझे अपना शुभचिंतक समझती है न?'

'यदि शुभचिंतक कहे कि आग में पड़, तो आग में पड़ना चाहिये क्या?'

किरीट खिलखिला कर हँस पड़ा।

'तेरे विवाह की बात करनी और आग में कूदने के लिए कहना क्या दोनो समान ही हैं?'

'तो तुम्हें मेरे विवाह की ऐसी क्या जल्दी पड़ी है?'

'मुझे बेहद जल्दी है। ये अच्छे लड़के हाथ से निकल जाएँगे। यदि तू विवाह कर ले तो मैं मुक्त हो जाऊँ।'

'तो क्या तुम्हारे घर में कोई आनेवाला है?'

किरीट फिर हँसा। इस लड़की को किरीट और घर का इतना अधिक मोह था कि यहाँ से जाने के लिए कहने पर वह कड़ी से कड़ी आलोचना करने लग जाती थी।

'मान ले कि कोई आनेवाला है।'

'मैं देखूँगी कि कौन आता है। फिर मैं जाऊँगी।'

'क्यों?'

'तुम्हें अकेले छोड़कर जाते मेरा मन नहीं मानता!' चमेली ने दयनीय चेहरा बनाकर कहा।

किरीट चमेली का 'वात्सल्य' समझता था। चमेली किरीट की इस तरह हिफाजत करती थी मानो वह कोई नासमझ बालक हो।

'याद कर। मैंने उस दिन क्या कहा था? मुझे मध्य-एशिया, रूस और चीन की खाक छाननी है।'

'मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी। मुझे भी घूमने का बहुत शौक है।'

'मेरे साथ भटकने की अपेक्षा यदि तू किसी से विवाह कर ले तो कितना उपयोगी जीवन बिता सके।'

'परन्तु मैं किसके साथ विवाह करूँ?' चमेली की इस उलझन को कौन सुलझाये? प्रश्न सुनकर किरीट हँसा।

'अच्छा आज जो पाँच आदमी आये थे वे कितने भले लड़के हैं। उनमें से किसी के भी साथ विवाह क्यों नहीं करती, सुखी होगी और तेरी खबर मिलती रहा करेगी।'

चमेली थोड़ी देर तक बिना बोले बैठ रही। फिर उसने किरीट की ओर देखे बिना ही कहा :

'तुम्हारा यही आग्रह है?'

'तू माने तो आग्रह है ही।'

'अच्छा, तो जैसी तुम्हारी मर्जी।'

'किसे पसन्द करेगी? इसीलिए तो मुझे जो सबमें अच्छे लगे ऐसे लड़कों को मैंने अपने घर बुलाया था।'

'परन्तु जिसे मैं पसन्द करूँगी वह मुझे पसन्द करेगा?'

'इसका जिम्मा मेरा। मेरे सम्पर्क में आनेवाले तेरे गुणों से अनजान नहीं रहते।'

'एक तुम्हें ही मैं निकाल बाहर करने जैसी लगती हूँ!'

'ऐसा क्यों कहती है? जब मेरी मा मरी उस दिन मुझे रोना आया था। मुझे डर है कि जिस दिन तू मेरे घर से जायेगी मेरा मन मेरे पास नहीं रहेगा।' उसकी ओर कतरा कर देखती हुई चमेली को विश्वास हुआ कि किरीट सच ही कह रहा है।

'देखना हाँ। फिर कहीं जिसको मैं चुनूँ वह मना न कर दे।'

'तुझे मेरा विश्वास नहीं ? मैं जिम्मा लेता हूँ, फिर क्या ?'

'जिम्मा लेकर कहीं तुम्हें पछताना न पड़े।'

'बिलकुल नहीं। तू केवल नाम बतला दे और बस।'

चमेली लजाई और थोड़ी हँसी :

'नाम-वाम नहीं लिया जा सकता।'

'तो पता कैसे चले ? अच्छा तू लिख दे।'

'नहीं। मुझे तो स्वयंवर करना है।'

'क्या ?'

'तुमने कहा ही था न।'

'मैं फिर से सबको एकत्रित कर दूँ ?'

'सबको इकट्ठा न करो तो सबकी तसवीरें इकट्ठी करो।'

'हाँ, यह ठीक है। मैं तुझे माला ला दूँगा। तुझे जो अच्छा लगे उसकी तसवीर पर माला डाल देना, बस।'

'परन्तु देखना, तुमने जिम्मा लिया है। मैं जिसकी तसवीर पर माला डालूँगी वह मना नहीं कर सकेगा।'

'बहुत ठीक।'

'फिर दूसरी शर्त याद है न ?'

'दूसरी शर्त कौन-सी ?'

'तुम विवाह करो तो मैं करूँ।'

'मैंने यह शर्त स्वीकार नहीं की थी।'

'झूठ बोलते हो तुम !'

'यह भी क्या पगली छोकरी है !'

'याद रखना। मेरे ऊपर जुल्म जो करते हो। तुम्हें न ब्याहूँ तो मेरा नाम नहीं !'

किरीट असम्भव धमकी सुनकर हँसा, परन्तु इस बारे में अधिक कुछ कहने से पहले ही उसके छापेखाने से दो आदमी आये।

३४

आ सिंधुमां धसी जतो गिरि आ महान
अर्थान्धकार महीं छाप पसारी श्याम;
आ एक तारकनुं तेज विलोपी नाखे
जे श्याम सिन्धु पटमां कंई मंद झांखे.*

— नरसिंहराव

'भाई साहब!' आगन्तुक वृद्ध पुरुष ने किरीट को नमस्कार कर कहा।

'आओ...पधारो!' किरीट ने प्रत्युत्तर दिया और उन्हें अपने सामने चटाई पर बैठाया।

छापेखाने से आनेवाले व्यक्तियों में एक वृद्ध और दूसरा युवक था। युवक ने किरीट के हाथ में कुछ काग़ज़ और एक तार दिया।

'ताजी खबर क्या है?' किरीट ने पूछा।

'यह तार आया है।'

'मंत्रियों का वेतन-सम्बन्धी होगा।'

'जी हाँ।'

---

* इस समुद्र में धँसा जाता यह महान पर्वत अर्धान्धकार में अपनी श्याम छाया प्रसारित कर इस एक तारे का प्रकाश जो श्यामसिंधु पट में झाँक रहा है, मिटा देता है।

'मुझे मालूम है। तू जा।'

'पीयूष भाई के पिता आपसे मिलने आये हैं।'

'हाँ मैं पहिचानता हूँ।'

वह युवक चला गया।

'कहिये आपको क्यों आना पड़ा?' किरीट ने उस वृद्ध से पूछा।

'पियूष को काफी मेहनत करके इतनी अच्छी जगह दिलवाई और तुम मेरा सब किया-कराया मिट्टी में मिलाते हो।' वृद्ध ने एकदम गुस्सा होकर कहा।

'पीयूष को जगह मेरी मेहनत से मिली है, तुम्हारी मेहनत से नहीं।'

'कैसे?'

'उसका प्रतिद्वन्दी कौन था, याद है न?'

'हाँ, एक विलायत से लौटा हुआ था।'

'फिर वह कहाँ गया? जानते हो?

'उसने अर्जी वापिस ले ली। पर तुम्हारा और पीयूष का क्या?'

'उस अर्जी को वापिस लिवानेवाला मैं हूँ। मुझे दोनो की आवश्यकता थी और है।' जरा आँखें सिकोड़ते हुए किरीट ने कहा।

'मेरे लड़के की तुम्हें क्या आवश्यकता है? भाई, उसे अपना ही काम करने दो न।'

'यदि मैंने उसे अपने साथ न लिया होता तो आज वह बम बनाते हुए पकड़ लिया जाता।'

'यह कैसे माना जाय कि अब भी नहीं पकड़ा जायगा? तुम्हारी संगति में जो पड़ा है।'

'मेरी संगति में पड़ने से पहले, यह जानते हैं कि वह कैसा था?'

'मुझे नहीं जानना। पर अब तो तुम उसे छोड़ो!'

'मैं छोड़ू! मैं उसे कहाँ कहता हूँ कि वह मुझे पकड़ रखे।'

'यह तो सब ठीक है, परन्तु इस काम का क्या करोगे?'

'कौन से काम का?'

'कल से पुलिस मेरा प्राण खा रही है।'

'उसमें मैं क्या कहूँ? आप सरकारी नौकर थे, मैजिस्ट्रेट थे, बड़े अफ़सर थे। क्यों अपना प्रभाव काम में नहीं लाते?'

'अब पेन्शन हुई। हमारा भाव ही कौन पूछता है?'

'पहले तो लोग आपका नाम सुनकर काँपते थे। है न?'

'हाँ' पुरानी महत्ता यादकर प्रसन्न हो वृद्ध ने कहा।

'पीयूष के विरुद्ध कोई भी सबूत नहीं है।'

'भाई तुम पुलिस को नहीं जानते। उन्हें सबूत खड़ा करने में देर ही क्या लगती है।'

'आप जैसे अफ़सर भी पुलिस को सुधार न सके?'

'वह कहीं सुधर सकती है?'

'तब क्या उपाय सुझाते हैं?'

'दीनानाथ तो कहते हैं कि तुमने एक महा भयंकर षड्यन्त्र खड़ा किया है। और वह मुझे कह गये हैं कि आज का समाचार उसकी पुष्टि करता है।'

'आज का कौन-सा समाचार?'

'दूसरे प्रान्तों में भी मंत्रियों का वेतन लूटा गया।'

'यह षड्यन्त्र भी मैंने ही किया, क्यों?'

'दीनानाथ तो कहता है।'

'तुम्हें दीनानाथ कहाँ से सब कह जाता है?'

'वह मेरे समय में जमादार था।'

'आपने उसे आगे बढ़ाया होगा।'

वृद्ध विचार में पड़ गये। दीनानाथ को आगे बढ़ाने का एक भी प्रसंग उन्हें याद न आया। उन्होंने तो उसे दो बार नौकरी से छुड़ाने का प्रयत्न किया था।

'पहचानता तो है ही।' उन्होंने कहा।

'ठीक! तो अब दीनानाथ ही रास्ता बताएगा।'

'वह तो कहता है कि तुम्हारे ही हाथ में सब कुछ है।'

'पीयूष क्या कहता है?'

'वह तो कुछ कहता ही नहीं, परन्तु पुलिस ऐसा मानती है कि उसने बेहोश होने का ढोंग रचकर उस गोरे को बेहोश कर दिया और रुपए ले लिये।'

'परन्तु वे रुपए उसकी तलाशी में से तो निकले नहीं।'

'वह गजेन्द्र भीतर गया था न?'

'बात सच है।' शान्ति से किरीट बोला।

'अब क्या होगा?'

'जो पैसा खर्च करेगा वह बच जायेगा। यह तो आप ही कहते हैं कि पुलिस अभी सुधरी नहीं है!'

'जितने कहो उतने पैसे खर्च करने के लिए मैं तैयार हूँ।'

'दीनानाथ को कितने देना तै किये हैं?'

'अरे भाई उसके हाथ में एक हजार नक़द दे रहा था; परन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। षड्यन्त्र के नेता के रूप में तुम्हारी मार्फ़त वह पूरी रक़म लेना चाहता है।'

'दीनानाथ ने खुद ऐसा कहा है?'

'हाँ।'

'तो मुझे एक हजार देते जाओ। इतनी रक़म से मैं चला लूँगा।'

वृद्ध ने चारों ओर देखा और जेब में हाथ डाला। कुछ विकल होकर वह बोले:

'भाई, मेरा अकेला एक बेटा है।'

'मैं आपको याद दिलाता हूँ कि मैं भी अपने बाप का इकलौता बेटा था पर आपको मुझपर दया न आई।'

'मैं तो तुम्हें जानता भी नहीं। यह तो पीयूष आता-जाता है और तुम्हारी बात करता है, बस इतना ही।'

'उस समय आप अत्यन्त सत्यवादी थे इसलिए आप में जरा भी दया न थी। अब आपका लड़का फँसा है तो पुलिस को घूस देते फिरते हो। रिश्वत दिये-लिये बिना दया उत्पन्न नहीं होती होगी ?'

वृद्ध चौंके। उन्होंने कभी रिश्वत दी नहीं थी। रिश्वत लेने-देने-वाले कई अभागे नौकरों की उन्होंने रोजी छीन ली थी। दो दिन पहले वह यह नहीं मानते थे कि रिश्वत देने की आवश्यकता राव और रंक दोनो को पड़ती है। कल से उनके बेटे पीयूष के पीछे पुलिस पड़ी थी। किसी भयंकर षड्यन्त्र में शामिल होने का आरोप उस पर रखकर उसे देश निकाले की सजा दी जा सकती है, ऐसे सबूत मिले थे। उनका परिचित जमादार दीनानाथ—जिसके हाथ में यह केस था, वह आज का पुलिस अफसर—उन्हें यह सब कहकर भड़का गया था। रिश्वत देनेवाले षड्यन्त्रकारियों के छूट जाने की सम्भावना है और रिश्वत लेने-देने का मशविरा षड्यन्त्रकारियों के नेता किरीट के साथ चल रहा है, दीनानाथ ने खबर सुनाकर किरीट की मार्फत ही सब काम लेने की उन्हें सलाह दी थी। डरे हुए वरज-भाई साहब, रिश्वत के दुश्मन होते हुए भी, बुढ़ापे में रिश्वत देने के लिए तत्पर हो जगत की कुटिलता को उत्तेजित कर अपनी अमलदारी में दी हुई सजाओं की निष्फल और निरर्थक मूर्ति बन गये।

'भाई, तुम किसके लड़के हो ?'

'मैं तो एक बहुत ही छोटे-से नौकर का लड़का हूँ। मेरे पिता नाकेदार थे। उन्हें बिना किसी सबूत के नौकरी से निकालकर आपने उनका खून किया था। हरिहर का नाम याद है ?'

'हाँ-हाँ; उनके विरुद्ध कोई लिखित सबूत नहीं था। फिर मुझे खेद हुआ था।'

किरीट के मन में आया कि इस बूढ़े की गर्दन दबा इसे तड़पा-तड़पा कर मार डालना चाहिये। उसकी आँखों में खून उतर आया। बूढ़े ब्रजलाल ने दृष्टि घुमा ली। जिस रिश्वत के लिए उन्होंने एक छोटे-से नाकेदार की गर्दन मारी थी उसी रिश्वत का अपराध वह स्वयं कर रहे थे और दण्डित गरीब नाकेदार का पुत्र उसका साक्षी बन रहा था।

'ब्रजभाई साहब, यदि आप पीयूष के पिता न होते तो मैं आपको रिश्वत के लिए अदालत में घसीट ले जाता और जरूर सजा दिलवाता, परन्तु पीयूष अपराधी हो सकता है, मेरे जैसे षड्यन्त्रकारी के साथ रह सकता है, तो भी उसमें सत्य का दम्भ नहीं है। आप तो सत्य के बल पर मोक्ष पा जाते; परन्तु रिश्वत का यह अपराध किया इसलिए पुनर्जन्म लेना ही पड़ेगा। दूसरे जन्म में याद रखना कि रिश्वत लेने-देनेवाले पामर तो दया के पात्र हैं। यदि कोई दोषी है तो कभी भी रिश्वत न लेने देने का घमण्ड करनेवाला ही है। आप पधारिये। आपके पुत्र को कुछ भी हानि नहीं होने की।'

ब्रजलाल का अभिमान इस तरह उतर गया जिस तरह राजा के सिर से राज-मुकुट उतर जाता है।

'तुम कैसे बचाओगे?' उन्होंने दीनता से पूछा।

'तुम्हें जानने की इच्छा है? देखो मैं तो आवश्यकता पड़ने पर घूस भी देता हूँ। जब तक धन-संग्रह करनेवाले लुटेरे संसार में हैं, रिश्वत का लेन-देन चलता ही रहेगा।'

'परन्तु इसका भरोसा क्या कि तुम बचाओगे ही?' बूढ़े बाप का मन न माना।

'तुम मेरे काम में सम्मिलित होगे? यदि होओ तो मैं तुम्हें अपनी योजना बतला दूँ, अन्यथा नहीं। भरोसा न होता हो तो भले ही कुछ दिन तक पुत्र की चिन्ता करते रहो। मेरे पिता को भूखों मारने का सहज बदला मिल जायेगा।'

ब्रजलाल की आखों में आँसू आ गये :

'भाई, बदला लेना हो तो मुझे मार डाल। मेरे पुत्र को किसलिए मुसीबत में डालता है ?'

'तुम्हारा पुत्र मुसीबत में है ही नहीं और यही मेरा बदला है कि वह मुसीबत में है, ऐसा तुम्हें लगता रहे।'

थोड़ी देर तक किरीट की खुशामद कर ब्रजलाल वहाँ से चले गये। भीलों द्वारा लुटे हुए अर्जुन जैसी दीन उनकी मनोवृत्ति हो गई थी। खिड़की में से ब्रजलाल को जाते हुए देख किरीट के मन में ख़याल आया :

'क्या करूँ, पीयूष को मैंने अपनाया है। नहीं तो सच्चाई का ढोंग करनेवाले इस ब्रह्मराक्षस को मैं सपरिवार भूखों मार डालता—टुकड़ों के लिए मोहताज कर देता !'

'किसी को मारना है क्या ?' पीछे से आकर चमेली ने पूछा।

किरीट का चेहरा और भी अधिक विषमय हो गया।

'मुझमें साहस होता तो मैं लाखों मनुष्यों को मारता ; परन्तु मैं भीरु हूँ—कापुरुष हूँ। मुझसे कुछ भी नहीं बन सकता।' वह बोल उठा और आकर हिंडोले पर पड़ गया।

'तुम्हें क्या बनाना है ? लाखों मनुष्यों को मारने की अपेक्षा कुछ भी नहीं बना सकना क्या बुरा है ?'

'तू हट जा मेरे पास से। मुझसे बात मत कर।'

चमेली को कोई लगती हुई बात कहनी होती तो किरीट हँसकर मजाक में कहता था। आज पहली ही बार वह ऐसी कठोरता से बोला था। चमेली अपमानित हुई ; परन्तु अपमान के साथ ही उसे किरीट के लिए चिन्ता भी हुई।

'क्या हुआ होगा ? किसी दिन नहीं और आज इस तरह क्यों ?' उसके मन में विचार पैदा हुआ। उसकी आँखों में आँसू भर आये।

'क्यों रोती है ?' जोर से किरीट ने पूछा।

'मैं नहीं रोती।' इतना-सा जवाब देने में वह सिसक पड़ी। रात हो गई थी इसलिए चमेली दीया जलाने लगी।

कीरीट का हृदय आज मथा जा रहा था। मीनाक्षी के लिए आतुर हृदय मीनाक्षी की प्राप्ति होते ही म्लान पड़ गया। व्रजलाल जैसे दुश्मन को आजीवन पीड़ित करने का मौका मिलने पर भी उससे लाभ नहीं उठाया जा सका। चमेली का विवाह कर देने का भी उसने निश्चय किया। आज उसके मन में ऐसा विचार स्पष्टतया स्फुरित हुआ कि वह बदला ले ही नहीं सकता। उसे लगा कि वह अति निर्बल है—बदला लेने की उसमें हिम्मत है ही नहीं। उसे अपने संस्कार पर—अपनी शिक्षा पर—भावुकता पर घृणा हो आई। यदि वह शिक्षित न होता तो बदला लेने में उसे जरा भी समय न लगता। यदि वह संस्कारशील न होता तो मीनाक्षी को बाहों में जकड़ कभी का भगा ले जाता। यदि उसमें भावुकता न होती तो पीयूष का जरा भी विचार किये बिना, उसके पिता को दुःख की चक्की में पीस डालता।

संस्कारहीन व्यक्तियों के निरन्तर सम्पर्क में रहने पर भी वह जड़ता को प्राप्त न हो सका था। सुरेन्द्र को नीचा दिखाने के लिए उसने योजना रची। मीनाक्षी को प्राप्त करने के लिए उसने साधन इकट्ठा किये। सुरेन्द्र को नीचा दिखाने की तैयारी में था। मीनाक्षी उसे मिल चुकी थी; परन्तु वह मीनाक्षी को ले नहीं सकता था, और सुरेन्द्र के प्रति अथाह वैर होने पर भी 'मीनाक्षी के पति' को नीचा दिखाने के लिए उसका मन नहीं होता था। मीनाक्षी को उड़ा ले जाने पर क्या वह 'मीनाक्षी' रहती ? मीनाक्षी का शरीर मिलता या मीनाक्षी ? फिर पीयूष के पिता व्रजलाल की क्रूरता उसी पर दुहराने का प्रसंग आया तो उसे अपने पिता हरिहर की याद आई। धनवान गरीब के पिता का खून करे तो ग़रीब किरीट का जीवन भर के लिए वैर हो जाय;

परन्तु इसी तरह एक ग़रीब यदि धनवान के पिता को जीवन भर तड़पाये तो उस पुत्र की ग़रीबों के प्रति दुश्मनी क्यों न हो ? पीयूष का तो वह पिता ही है न ?'

पारस्परिक वैर से ग़रीबों या धनिकों का उद्धार हो सकता है ?' बिना वैर के लड़ने की युक्ति क्यों नहीं हो सकती ? वह गुजराती महात्मा किसकी पुकार करते हैं ? यह जो कहा जाता है कि वैर बिना उन्होंने संसार को लड़ने की कला दी है सो क्या है ?

वह उठकर इधर-उधर फिरने लगा। उसे अशान्त देख चमेली ने पूछा :

'मैं चली जाऊँ ?'

'कहाँ ?'

'जहाँ तुम भेज दो—मेरे मा-बाप के पास।'

'और मैं राक्षस अपना हृदय-रक्त पीता हुआ अकेला बैठ रहूँ, क्यों ?' किरीट जोर से बोल उठा। चमेली के जाने का विचार उसे असह्य लगा। अकेले रहने का डर लगा।

'मैं कहाँ जाना चाहती हूँ ? यह तो मैं इसलिए कह रही हूँ कि मेरे जाने से तुम्हें शान्ति मिलती हो तो मैं चली जाऊँ।'



३५

माशुकोना गालनी लाली मही' लाली, अने
ज्यां ज्यां चमन ज्यां ज्यां गुलो, त्यां त्यां निशानी आपनी ! *
—कलापी

'शान्ति ! अब इस जन्म में तो कदापि नहीं।' किरीट बोला।
'परन्तु कहो तो सही कि क्या करने से तुम्हें शान्ति मिलेगी ?'
'या तो मैं दुनिया को मार डालूँ या दुनिया मुझे मार डाले।'
'दोनों में से एक भी नहीं हो सकता।'
'तब तो अब तू चुप रहे तो शान्ति मिले।'
'तुमने मीनाक्षी के साथ विवाह क्यों नहीं किया ?'
'तू जरा चुप बैठेगी ?'

चमेली थोड़ी देर तक चुप बैठी रही। किरीट भी बिना बोले बैठा रहा। उसके प्रयत्नों में मीनाक्षी की प्राप्ति का एक छिपा परन्तु सबल कारण था। अब तो ऐसी स्थिति आ गई थी कि एक ओर प्रयत्न और दूसरी ओर मीनाक्षी। ऐसे समय कोई मनोवृत्ति—कोई संस्कार—कोई धारणा उसके प्रेम-पथ में पर्वत की तरह आ खड़ी थी। मनुष्य कई बार खराब होने की सोचता है, परन्तु वह काम भी उसे कठिन

* माशूकों के गाल की लाली में लाली, और
जहाँ-जहाँ चमन जहाँ-जहाँ गुल, वहाँ-वहाँ निशानी आपकी।

मालूम पड़ता है। नित्य चाँद की आकांक्षा करनेवाले किसी पगले के हाथ में चाँद रख दिया जाय तो उसी क्षण उसे डर लगेगा कि उसके पार्थिव मैले हाथ कहीं चन्द्रमा पर दाग न लगा दें। किरीट को भी ऐसा ही कोई डर बेचैन करता था।

कुछ दूर पर कोलाहल सुनाई दिया। उसका घर जरा एकांत में था; परन्तु थोड़ी ही दूर पर बस्ती थी। वह बस्ती ग़रीब और मध्यम वर्ग के लोगों की थी। वहाँ किरीट के परिचित भी रहते थे। पुलिस का ऐसा विश्वास था कि उस बस्ती में किरीट के गुप्तचर रहते हैं और किरीट की रक्षा करने के सिवा समाचार लाने ले जाने का काम इस तरह से करते हैं कि किसी की पकड़ में न आ सकें।

किरीट उठ खड़ा हुआ। कोलाहल बढ़ने लगा। इस तरह का कोलाहल शायद ही कभी उस बस्ती में हुआ होगा। किरीट के गुप्त-चरों की बस्ती पर पुलिस की दौड़ आने के डर से या किसी और वजह से किरीट उस ओर जाने के लिए तैयार हुआ।

'मैं आता हूँ।' कहकर घर में से निकल किरीट अन्धकार में अदृश्य हो गया। विचित्र, रहस्यमय जीवन बिताने और सुखभोग करने के योग्य होते हुए भी तन-मन का महान दुःख भोगनेवाले इस पुरुष को सुखी करने के लिए प्रयत्नशील चमेली खिड़की में खड़ी उसे अन्धकार में जाते हुए देखती रही।

किरीट को अन्धकार में से प्रकाश दिखाई दिया।

मुहल्ले की एक कोठरी के आगे पचास-साठ आदमी इकट्ठा हो गये थे।

'क्या है?' किरीट ने पूछा।

'नसीर ने खून कर डाला।'

'किसका?'

'अमीना का।'

'अरे!' किरीट के मुँह से निकल पड़ा। बात उसकी समझ में न आई हो, इस तरह शीघ्रतापूर्वक लोगों के बीच से रास्ता बनाते हुए वह कोठरी में घुस गया। नसीर अपनी पत्नी के शव के पास सिर पर दोनो हाथ धरे बैठा था। वह आँखें फाड़े घायल पत्नी की छाती से बह रहे खून की धारा को एकटक देख रहा था।

शव-जैसे दिखाई पड़ते शरीर में अब भी जीवन था। अमीना ने हाथ उठाकर नसीर की गोद में डाल दिया।

'नसीर!' किरीट ने उसे आवाज़ दी।

'भाई! बीबी जा रही है!' किरीट के सम्पर्क में रहनेवाले ग़रीब हिन्दू मुसलमान उसे भाई कहते थे।

'तूने क्या किया!'

'अमीना को मार डाला।'

'क्यों!'

'इस कम्बख्त की तक़दीर!' नसीर ने अपने कपाल की ओर अँगुली उठाई।

अमीना की आँख खुली। उस सुकुमार और सुडौल मुस्लिम युवती के चेहरे पर एक अनोखे सौन्दर्य की आभा व्याप्त हो गई। वह हँसी और आँख के इशारे से उसने किरीट को पास बुलाया।

'भाई!' मुस्लिम जबान की मिठास इन दो अक्षरों के उच्चारण में छलक आई। किरीट को लगा जैसे एक बहिन उसे स्वर्ग में से पुकार रही है। स्पष्ट सुनी जा सकनेवाली आवाज़ में ध्यानपूर्वक सुनते हुए किरीट से अमीना ने कहा :

'भाई, इसने नहीं मारा।'

नसीर की आँखें और अधिक फट विस्फारित हो गईं। वह दीपक के म्लान प्रकाश में कोई अलौकिक दृश्य देख रहा था।

'तो क्या हुआ!'

'मैं अपने हाथों ही मरी। छुरी मैंने ही भोंकी।'

'अमीना! अमीना!' नसीर पुकार उठा। वह समझ न सका कि अमीना झूठ क्यों बोल रही है—अथवा साश्चर्य वह समझने लगा कि अमीना झूठ क्यों कह रही है।

'किस लिए?'

'शौक।'

इतना कहकर अमीना ने आँखें फिर मूँद लीं। जीवन-रस को स्वाद से पीनेवाला मुसलमान यदि मृत्यु को शौक मानता है तो कोई आश्चर्य नहीं।

'डाक्टर को बुलाना चाहिये। मैं आया।' कहकर किरीट बाहर निकला। कुँज डाक्टर था; परन्तु यह सोचते हुए किरीट को कि उसे बुलाने का जल्दी से क्या प्रबन्ध किया जाय, दूर से एक मोटर का प्रकाश दिखाई दिया। मौज उड़ाते हुए किसी पूँजीपति की मोटर इस ग़रीब मुसलमान की आवश्यकता के समय ज़बर्दस्ती से भी काम में लेने का निश्चय कर किरीट ने दो-चार परिचितों से कहा:

'मोटर रोको।'

मोटर रुकी। पच्चीस-तीस आदमियों ने उसे चारों ओर से घेर लिया।

'दस मिनट के लिए अपनी मोटर दीजिये न! एक स्त्री घायल पड़ी है। डाक्टर को बुलाना है।' किरीट बोला।

मोटर की पिछली बैठक में जहाँ बिलकुल अँधेरा था, एकदम बिजली जल उठी। किरीट ने सुरेन्द्र को देखा और सुरेन्द्र ने किरीट को। दोनो नेत्र प्रकाशित हो गये। वह प्रकाश परस्पर टकराकर बुझ गया। सुरेन्द्र चुपचाप गाड़ी में से उतरा। उसने शोफ़र को आज्ञा दी:

'जहाँ से कहें जाकर डाक्टर को बुला ला।' किरीट की ओर देखकर उसने कहा: 'कोई साथ जाता है? मैं अपने डाक्टर को बुलाऊँ?'

किरीट ने एक आदमी को मोटर में बैठा डाक्टर को बुला लाने के लिए कहा। मोटर घूमी। सुरेन्द्र और किरीट थोड़ी देर खड़े रहे। सबसे अलग दिखाई पड़ती सुरेन्द्र की वेशभूषा सभी एकत्रित व्यक्तियों का ध्यान खींचती थी।

'तुझे कष्ट तो होगा। जरा मेरे घर बैठेगा?' किरीट ने पूछा।

'तू भी चलता है?'

'नहीं। उस घायल स्त्री को छोड़कर मैं हट नहीं सकता। मेरे मित्र की पत्नी है।'

'मैं तेरे साथ ही चलूँगा।'

दोनो नसीर की कोठरी में गये। अमीना आँखें खोले किसी को ढूँढ़ रही थी। किरीट के आते ही उसने उसे फिर बुलाया और कहा :

'खून नहीं; हाँ! मैं खुद ही मरी हूँ।...ओ नसीर क़यामत... जल्दी...आओ!'

अमीना की आँखें मुँद गईं : उसके हाथ खिंचे; खिंचते-खिंचते एक हाथ नसीर की गोद में गिरकर उछल पड़ा। अमीना की आत्मा जन्नतनशीन हो गई।

'अमीना! अमीना! मैं और तू साथ ही कब्र में!' कहकर नसीर ने हाथ में छुरी ले छाती की ओर मारी, परन्तु छाती में लगने से पहले ही पास खड़े सर सुरेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ लिया। सर सुरेन्द्र को छुरी की थोड़ी-सी चोट लग गई।

'या मालिक! मुझे कौन रोकता है?' इतना कहकर नसीर मूर्छित हो जमीन पर पड़ा।

एक जीवित स्त्री के देह पर युद्ध मचा, विलग हो गये मित्र एक मृत स्त्री के देह पर इकट्ठा हुए। दोनो के खींचे हुए आयुध झुक गये; मौन युद्ध-विराम शुरू हुआ। मृत्यु ने प्रेमियों को यथार्थ प्रेम सिखलाया। वैरियों को वैर की मर्यादा बतलाई। एक दूसरे के लिए याद किये हुए

धधकते शब्द अपने आप शान्त हो गये। दोनो बिना कुछ बोले, अमीना के शव को देखते हुए, नसीर को होश में लाने का प्रयत्न करने लगे।

डाक्टर आया। पुलिस भी आई। अमीना के लिए अब डाक्टर की कोई आवश्यकता न थी। मूर्छित नसीर को वह होश में लाया। होश में आने के बाद से उसने शोक प्रकट करना छोड़ दिया। उसने पुलिस से कहा कि अमीना का खून उसने किया है। खून को आँखों देखनेवाला साक्षी (चश्मदीद गवाह) कोई न था। किरीट और सर सुरेन्द्र के बयान से तो अमीना का आत्महत्या करने का, क्षणभर के लिए किया हुआ, इकरार प्रकट हुआ।

वफादारी, प्रेम और असंस्कृति की त्रिवेणी स्वरूप इस गरीब मुसलमान पति-पत्नी की करुण कहानी साधारण दृष्टि से तो एक अशिक्षित, उत्तेजित और अवारे मुसलमान का अनुत्तरदायित्वपूर्ण करनी थी; परन्तु किरीट के हृदय को तो वह किसी महाकवि की श्रेष्ठ कविता के समान थी।

जुआ और शराब के व्यसन में फँसे हुए एक मुसलमान पहलवान नसीर को आजीविका से लगा, अपना रक्षक और मित्र बना किरीट ने भूल नहीं की थी। मुसलमान जैसा वफादार दोस्त शायद ही मिल सकेगा। मुट्ठी भर नाज में मस्त रहने ग़रीबी को रंगीली कल्पनाओं से स्वर्ग जैसी रौनकदार बनानेवाले इस मस्त मुसलमान को अमीना-सी गुलबदन पत्नी मिली थी। दोनो के सुखमय जीवन में पिछले कुछ दिनों से थोड़ी-सी खामी आ गई थी। भूतपूर्व जुआरी नसीर के परिचित 'उस्ताद' ने चमेली का पीछा नहीं छोड़ा था। उसे उड़ा ले जाने या उसका खून करने के लिए वह तरकीबें सोचता ही रहता था, परन्तु किरीट की सावधानी से वह कुछ कर न सका। किरीट अच्छी तरह से जानता था कि ग़रीबों की सेवा में उनका अज्ञान, अन्ध-

विश्वास और संस्कारहीनता भी भारी विघ्न डालती हैं और कई बार इनसे अपनी ही रक्षा करना आवश्यक हो जाता है। उस्ताद को अच्छे रास्ते लगाने के लिए किरीट ने काफी प्रयत्न किये, परन्तु चमेली को अपने हाथ से खींच ले जानेवाले दुश्मन के प्रति उस्ताद की वैर-भावना कम न हुई; और नसीर द्वारा खबर मिलने पर उसी को उस्ताद पर निगरानी रखने का काम सौंप दिया गया।

नसीर को ऐसा मालूम पड़ा कि कभी-कभी चमेली के पास आती-जाती अमीना के साथ उस्ताद कुछ सलाह-मशविरा करता है। उसने अमीना को चेतावनी दी। उस्ताद से दूर रहने के लिए कहा। अमीना को बुरा लगा। उसने सोचा कि नसीर को उसके चाल-चलन के बारे शंका पैदा होने लगी है। शंका प्रेम का श्मशान है। अमीना को नसीर की ऐसी अनुदारता बिलकुल अच्छी न लगी। एक दिन रूठ कर अमीना ने कहा :

'तो ऐसा ही क्यों नहीं कहते कि तुम्हें कुछ शंका है।'

'मेरा तुझ पर शक नहीं है।' नसीर ने कहा।

'तो उस्ताद के साथ बोलने से क्यों मना करते हो?'

'हम पर्दानशीन कहे जाते हैं...'

'वाह! तुमने कब पर्दा रखवाया है? फिर हम ग़रीबों का पर्दा क्या?'

'पर्दा हो या न हो तो भी मैं आज से तुझे उस्ताद के साथ बोलने से मना करता हूँ।'

'क्यों?'

नसीर 'क्यों' का उत्तर नहीं दे सकता था। वह सौगन्ध से बँधा हुआ था। किरीट के कितने ही विचित्र साहसों का वह न केवल साक्षी था, परन्तु कितने ही साहसों में वह उसका साथी भी था। वचन-बद्ध मुसलमान ज़बान कट जाने देता है, सिर कट जाने देता है, परन्तु

बँधी जबान कभी खोलता नहीं। उसने अपनी प्रिय पत्नी को कारण नहीं बतलाया।

प्रेमियों को एक दूसरे को चिढ़ाने में बड़ा मज़ा आता है। कई बार यह चिढ़ाना प्रेम का व्यतिरेक भी कर जाता है और प्रेमियों के स्वभाव को भयानक बना देता है। अमीना को इस बात से बुरा तो लगा ही कि उस जैसी स्नेहमयी पत्नी पर पति अविश्वास करता है। नसीर ने विश्वास दिलाया कि उसे कोई शक नहीं है। तो फिर ऐसा क्या कारण हो सकता है कि पत्नी से भी छिपाना पड़े? पत्नी ने थोड़ी ज़िद की। परेशान, असंस्कारी पति को इस ज़िद से गुस्सा आ गया।

'तू अधिक पूछेगी तो मैं तेरी जान ले लूँगा।' नसीर ने कहा।

जान लेने की धमकी के पीछे कई बार चुम्बन मिलते थे। अमीना ने शीघ्र चुम्बन प्राप्त करने के लिए हँसते-हँसते कहा :

'बड़े पहलवान हुए हो। जान लेने की धमकी तो बहुत बार दी, हिम्मत तो है नहीं!'

जाने क्यों नसीर का गुस्सा काबू में न रहा। कुछ समझ में आये, उससे पहले ही उसने पास पड़ी हुई एक बड़ी सी छुरी अमीना पर फेंक मारी। छुरी लगते ही नसीर उसके पास दौड़ा गया। अमीना धरती पर लोट गई और उसकी छाती को चीरकर लाल रुधिर उसके रंगीन परिधान को गीला करता हुआ जमीन पर बह निकला।

उसने अपराध स्वीकार किया; परन्तु अपराध करने का कारण नहीं बतलाया। उसपर मुक़द्दमा चला। किरीट ने उसके लिए एक अच्छा वकील किया। किरीट और प्रान्त के मंत्री सर सुरेन्द्र की गवाहियाँ हुईं।

उन्होंने नसीर को अपराध करते हुए देखा नहीं था, परन्तु मरनेवाली स्त्री के अन्तिम शब्द सुने थे। अमीना ने आत्महत्या करने की बात कही थी। डाक्टर का कहना था कि ऐसा घाव किसी के मारने

या खुद चोट करने से भी होता है। आसपास के सभी लोगों ने साक्षी दी कि अमीना और नसीर में बेहद प्यार था। नसीर को खून करते हुए देखनेवाला कोई न था। खून करने का कोई कारण भी समझ में न आया। 'मुझे फाँसी दो...मैंने अपराध किया है...मुकदमा बन्द कर मुझे रस्सी से लटका दो...' बार-बार इस तरह चिल्लाते हुए आरोपी के शब्दों का वकील ने यह अर्थ लगाया था कि अमीना का वियोग सह न सकने के कारण आरोपी स्वयं मरना चाहता है। इसके समर्थन में वकील ने यह बात रखी कि आरोपी ने आत्महत्या करने के लिए छुरी भी उठाई थी जिसे सर सुरेन्द्र ने पकड़ लिया। अन्त में वकील साहब ने शान से यह कहा कि अमीना ने किसी क्षणिक आवेश में आत्महत्या कर डाली होगी और नसीर निर्दोष है।

अँगुली पर रावण चित्रित करने की शक्ति सीता के साथ अदृश्य नहीं हुई है। वर्तमान काल के वकीलों ने इस शक्ति को संचित कर रखा है और इस कला में वे यहाँ तक आगे बढ़ गये हैं कि यदि अँगुली न हो तब भी वे रावण को चित्रित कर दिखाते हैं!

न्यायाधीश को दलील यथार्थ लगी और फाँसी की कामना करनेवाले प्रेमी को उन्होंने छोड़ दिया।

'अमीना! अमीना! तू झूठ क्यों बोली!' फाँसी की सजा से बरी हुआ आरोपी विलाप करने लगा। वह एकाएक शान्त पड़ गया और बोला :

'ठीक। यही सजा ठीक है। तुझसे दूर रहना क्या जीवन-भर के लिए फाँसी नहीं है! मेरा अपराध इसी सजा के योग्य है!'

नसीर फकीर हो गया।

मुक़दमे में तीन-चार महीने बीत गये। अमीना की क़ब्र पर एक छोटा-सा सफेद मक़बरा बनाया गया—मानो प्रेमी नसीर का आँसू! पास ही एक छोटा-सा हौज बनाया गया। नसीर अपनी प्रियतमा के

साथ दफ़न होना चाहता था। उसकी प्रबल आकांक्षा यही थी कि अमीना की क़ब्र के पास ही उसकी क़ब्र बने। उसकी आकांक्षा पूरी करने के लिए ही नहीं, परन्तु प्रेम-शौर्य की इस महान घटना को मूर्त-स्वरूप देने की प्रबल इच्छा के वशीभूत हो किरीट ने अमीना की क़ब्र पर एक छोटा-सा परन्तु ख़ूबसूरत मक़बरा बनवा दिया। नसीर रात-दिन वहीं रहने लगा। उसके मन में ईश्वर और अमीना एक हो गये। रसिक प्रेमी योगी हो गया।

फिर भी जब कभी वह किरीट से मिलता कह उठता :

'भाई, अमीना ने झूठ कहा था, न?'

किरीट उसका कुछ भी उत्तर नहीं देता था, परन्तु ख़ून होने के दिन ही जब नसीर ने इस तरह से कहा तो उसने पूछा :

'क्यों?'

'इस कम्बख़्त को जीवित रखने के लिए।'

अन्धकार में भटकती हुई किरीट की आत्मा को प्रकाश मिला :

'कितना सुन्दर असत्य! कितनी भव्य झूठ!' किरीट मन ही मन बोला। अपने प्रियतम को जीवित रखने के लिए, प्रियतम के हाथ से ही मरनेवाली प्रियतमा झूठ बोलती है। उसी के पीछे मरने के लिए तत्पर प्रेमी जीवन भर के वियोग को धर्म मानकर सह लेता है।

वह क्यों नहीं कह देता कि मीनाक्षी को वह चाहता ही नहीं?

'नहीं नहीं। यह झूठ तो मुँह से निकल ही नहीं सकती। तब?'

यदि किरीट मीनाक्षी को फिर सर सुरेन्द्र से प्रेम करनेवाली बना दे तो कैसा?

एक असंस्कृत मनुष्य अपनी मृत प्रियतमा को ईश्वर बनाकर पूजता है, तो एक संस्कृत पुरुष अपनी जीवित प्रियतमा को क्यों न आराध्य बनाये? उसकी आराधना में तो सर्व प्रथम हृदय को तोड़-मरोड़ कर निकाल देना पड़ेगा। प्रेमी को स्नेह-यज्ञ में क्या-क्या होमना न पड़ेगा!

हृदय और प्राण की आहुति तो सर्व-प्रथम देनी पड़ेगी। फिर शरीर को होमने में हर्ज ही क्या है?

'मैं किसके सुख की कामना करता हूँ? अपने या मीनाक्षी के?'

प्रश्न और उसका उत्तर साथ ही मिले :

'यदि मीनाक्षी को सुखी देखना चाहूँ तो मेरा सुख भले ही भस्म हो!'



३६

प्रेमनी पीडा ते कोने कहीए
हो मधुकर,
प्रेमनी पीडा ते कोने कहीए !
थातां न जाण्युं प्रीत जातां प्राण जाये !
हाथनां कीधां ते वाग्यां छे ये,
हो मधुकर ! *

—दयाराम

सारे संसार को भस्मीभूत करने की शक्ति रखनेवाला दावानल, ईंधन समाप्त होते ही, अपनी गगन-चुम्बी ज्वाला को समेट कर, धीरे-धीरे इतना निष्प्राण हो जाता है कि एक फूंक में बुझ जाय। मीनाक्षी की प्राप्ति के बाद उसकी वैरागिन भी कजलाने लगी। जोर लगा-लगाकर वह उसे जलाये रखने का प्रयत्न करता था, परन्तु

---

* प्रेम की पीड़ा किससे कहिये
ओ मधुकर,
प्रेम की पीड़ा किससे कहिये !
होते न जानी प्रीति जाते प्राण जायँ !
हाथ का किया लगता है ये
ओ मधुकर !

हृदय-स्थिति कोई संस्कार-बल उस ज्वाला पर शीतलता का सिंचन करता ही रहता था।

फिर संसार की दृष्टि में भयंकर दिखाई देनेवाले नसीर के काम ने किरीट की अग्नि को अन्त में फूँक मारकर बुझा दिया। उसका हृदय मूर्छित हो गया। उसकी समझ में न आया कि मीनाक्षी के साथ किस तरह का व्यवहार रखा जाय। मीनाक्षी का सुख वह कैसे बढ़ाये? नसीर और पीयूष के मुक़दमे में उसका कुछ समय लगता था; बाक़ी बचा हुआ समय वह अमीना के मक़बरे की व्यवस्था करने में बिताता था। उसके दूसरे जो भी काम-काज थे उनसे उसे छुट्टी लेनी पड़ी।

तीसरे महीने की पहली तारीख आई; इसका उसे खयाल न था। तीसवीं तारीख की रात को वह शोक-मग्न बैठा था। उसके युवक मित्र पास ही थे। इतने में ही किसी आदमी ने आकर उसे चिट्ठी दी।

'कहाँ से लाये?'

'सर सुरेन्द्र के यहाँ से।'

शिथिल चित्त सहज जाग्रत हुआ। उसने पत्र खोलकर पढ़ा और उसे आश्चर्य हुआ।

'पहुँच तो नहीं देनी है?' उस आदमी ने पूछा।

'नहीं। मेरा सलाम कहना।'

उसका हृदय अपने प्रतिस्पर्धी को सलाम कहने जितना विनम्र हो गया था।

उसने पत्र मधुकर की ओर फेंका।

पढ़कर मधुकर ने पूछा:

'सभी को पढ़ सुनाऊँ?'

'हाँ।'

मधुकर ने पत्र पढ़ा:

'किरीट,

तेरे पत्र में प्रकाशित होनेवाली तर्कनाएँ पढ़कर मुझे इतना विश्वास तो हो ही गया है कि मुझे मिलनेवाला वेतन मेरे लिए अनावश्यक है। तेरे पत्र का यह कथन कि उस रक़म से मेरे दरिद्र मानव-बन्धुओं का अच्छी तरह से पोषण होगा, मुझे मान्य है परन्तु दीनता को मैंने अभी तक परखा नहीं है। दरिद्रता की भूमिका मैंने देखी नहीं, और मेरी समझ में नहीं आता कि यह अतिरिक्त रक़म वहाँ कैसे पहुँचाई जाय। इसलिए इस पत्र के साथ यह रक़म मैं तुझे भेज रहा हूँ।

'तेरी सलाह हो तो दीनानाथ को सौंपी हुई छान-बीन की कार्रवाई मैं बन्द करवाऊँ। इसका अर्थ यह मत समझना कि पिछले अपराधों में मैं तुझे सम्मिलित समझता हूँ। सम्मिलत हो तो भी उसकी वास्तविकता को मैं स्वीकार करता हूँ और इसलिए उसमें कोई दोष नहीं मानता।

'काश्मीर कब जाना है? मीनाक्षी अब मुझे भी साथ चलने को कहती है। तू मिले तो बहुत-सी बातें हों।'

युवक हँसे; वे समझे कि मंत्री उनसे डरने लगा है। किरीट जानता था कि सुरेन्द्र डरनेवाला नहीं है।

'कल मैं धारा-सभा में प्रेक्षक की हैसियत से जाने की सोचता हूँ।'

किरीट कभी उस सभा में गया नहीं था। पत्रकार का परवाना लेकर मधुकर अकसर ऐसी सभाओं की 'रिपोर्ट' लेने जाया करता था। मधुकर को ही प्रेक्षक का परवाना मँगाने का प्रबंध करना था। यह सुनकर कि धारा-सभा की चालू बैठक देखने के लिए भी परवाने की आवश्यकता पड़ती है, एक बार चमेली ने पूछा था :

'वहाँ भी नाटक जैसा ही है क्या?'

चमेली अनजान थी; परन्तु अब यह अज्ञात नहीं रहा है कि

धारा-सभा से परिचित भी उसे नाटक ही समझने लगे हैं।

सब जा रहे थे तब चमेली ने धीरे से किरीट से कहा :

'वे तसवीरें ?'

'कैसी ?'

'क्यों ? भूल गये ? मेरे लिए मँगवाने की जो थीं।'

किरीट हँसा :

'तू तो बहुत बेशर्म हो गई !'

'उतावली तो तुम ही करते थे।'

'नसीर के काम में मैं सभी कुछ भूल जाता हूँ···अरे मधुकर !'

इतना कहकर मधुकर को दूसरे दिन पाँचों आदमियों की तसवीरें लाने के लिए कहा।

'साथ में एक हार भी लेते आना।' किरीट ने हँसते-हँसते कहा।

'क्यों ?' मधुकर की समझ में कुछ न आया।

'तू ले तो आना। फिर पता चलेगा।'

यह सम्भव है कि हरिश्चन्द्र को राजपाट दान करते समय आनंद हुआ होगा ; वह सतयुग का क्षत्रिय था। बलिराजा को, विष्णु का छल जानने पर भी अपना शरीर पाताल में पहुँचाते समय हर्षाश्रु आये होंगे, क्योंकि साक्षात् परमात्मा उसके सान्निध्य में थे। कोहेनूर हीरा अंग्रेज़ों को भेंट देते समय पदभ्रष्ट दलीपसिंह की मा को ऐसा लगा होगा कि पाप गया। राज्य गँवाने के बाद राजमुकुट पर चमकते हुए हीरे की क़ीमत उसके मन पर नहीं रह सकती, परन्तु मीनाक्षी को छोड़ देने का दृढ़ संकल्प करते समय किरीट को असह्य वेदना हो आई। उसे ऐसा ही मालूम पड़ा कि वह अपने ही हाथों अपनी प्रियतमा का खून कर, उसके शरीर को भी जलाकर भस्म कर रहा हो।

परन्तु वैसा किये बिना मीनाक्षी सुखी नहीं हो सकती थी। विवाह-बन्धन तोड़ने की अभी तक भारतवर्ष में अधिक सुविधा नहीं है और

तलाक़ के योग्य कुछ दम्पति होंगे, फिर भी पाश्चात्य देशों की तरह इस प्रथा के प्रति तटस्थता प्राप्त करने में अभी संस्कारशील जनता को समय लगेगा। लग्न-बन्धन को मात्र शारीरिक सम्बन्ध या सुविधा ही का सम्बन्ध अभी स्वीकार नहीं किया जाता—यद्यपि उस बन्धन में ये दोनो अंश ही मुख्यता से देखे जाते हैं। इसलिए बिना विवाह के शरीर-सम्बन्ध या सुविधा के सम्बन्धों को हम मानप्रद नहीं समझते। मीनाक्षी ऐसा कोई भी सम्बन्ध स्वीकार करती या नहीं? यदि स्वीकार करे तो उसे करने दिया जाय या नहीं? यह मानें कि उसे वह स्वीकार करने दिया जाय—और उसके पति की उदारता के बाद में यह निश्चित हो जाय कि वह कोई कानूनी अड़चन नहीं डालेगा—तो भी इस तरह स्वीकार की गई मीनाक्षी और उसकी पूजनीय प्रतिमा बाद में एक ही रह सकेगी या नहीं!

किरीट को इस अन्तिम प्रश्न का उत्तर नकारात्मक मिला। नकारात्मक उत्तर देनेवाली मनोधारणा के साथ उसने बहुत संघर्ष किया। परन्तु, सच या झूठ बद्ध-मूल मनोधारणाओं को जल्दी निवारण नहीं किया जा सकता। हथेली पर सिर लेकर जूझनेवाले की तरह उसने स्वप्न का छेदन कर डाला और सुबह मीनाक्षी को कहला भेजा कि 'मैं सर सुरेन्द्र का महत्त्वपूर्ण भाषण सुनने के लिए धारा-सभा में जानेवाला हूँ, और जाते-जाते तुमसे मिल जाऊँगा।'

मीनाक्षी और सुरेन्द्र अब अधिकांश समय एक-दूसरे के सम्पर्क में ही बिताते थे। मीनाक्षी के पास से सर सुरेन्द्र से हटा ही नहीं जाता था। उसने दफ़्तर जाने का समय कम कर दिया; क्लब में भी वह कई दिनों से नहीं गया था। बाहर जाने के कई कार्यक्रम रोक दिये; सभाओं में प्रमुख बनने के कई अवसर छोड़ दिये और प्रीति-भोजों में जाकर अपनी मोहक वाणी से स्त्री-पुरुषों को चकित करने का लोभ भी समूल उखाड़ फेंका।

मधुकर जब किरीट का सन्देशा लाया तो सुरेन्द्र और मीनाक्षी साथ ही बैठे थे। सुरेन्द्र ने पूछा :

'इधर तो तू किरीट से नहीं मिली, क्यों ?'

'नहीं।' मीनाक्षी ने जवाब दिया।

'क्यों नहीं मिली ?'

'तुमने मना किया है न ! तुम्हें अच्छा न लगे ऐसा मैं क्यों करूँ ?'

'इतना अधिक जुल्मी हूँ ?'

सुरेन्द्र का केवल जुल्म ही होता तो मीनाक्षी उसके सामने विद्रोह करने को तैयार बैठी थी। जुल्म का परिणाम विद्रोह : राजनीति हो या प्रेम-नीति ! परन्तु सुरेन्द्र की रागहीन अवस्था दूर होते ही, जाग्रत होती हुई कठोरता में मीनाक्षी को प्रेम झाँकता हुआ दिखाई दिया। इस अनमानीती रानी को मालूम होने लगा कि कीर्ति के पीछे पागल, उसी के रनवास में घुसा रहनेवाला पति, मीनाक्षी के महल में भी आने-जाने लगा है। उसका पत्नीत्व इस कठोरता से थोड़ा सन्तुष्ट हुआ।

'मैं कहाँ कहती हूँ कि तुम जुल्मी हो ? परन्तु तुम्हें फ़ुर्सत न मिले और मैं घड़ी भर के लिए किरीटकान्त से मिलूँ तो तुम्हें बुरा लगने लगा। तुमने उनसे मिलने के लिए तो मना ही किया था। फिर मैं क्यों मिलूँ ?

'ऐसा क्यों कहती है ? उसके साथ काश्मीर जाने का मैं तुझसे आग्रह करता हूँ। तेरे लिए गर्म कपड़े लाया हूँ। कभी योंही कह दिया उसमें इतना गुस्सा ?'

पत्नी को रिझाने का काम पति सीख रहा था। मीनाक्षी ने उत्तर नहीं दिया।

पृथ्वी को सूर्य भी खींचता है और चन्द्रमा भी। उगते यौवन में मीनाक्षी ने इन पारस्परिक आकर्षणों का अनुभव किया था और चंद्रमा की शीतलता से मोहित होते हुए भी उसमें सूर्य से कम प्रकाश देख—

नहीं, उसमें क्षय होने की गुञ्जाइश देख, उसने सूर्य का साथ दिया था। मध्याह्न-काल में तपता हुआ सूर्य जगत् का तेजो-मुकुट बन, पृथ्वी से दूर और पृथ्वी से अलग रह उसे अभिमान से जलाता था, पृथ्वी के अस्तित्व ही को भूल तेजोमद में मत्त हो गया था। पृथ्वी चाँद की याद क्यों न करती? आग में जल-भुन रही वह चन्द्रमा की शीतलता क्यों न खोजती? वह चन्द्रमा को खोज रही थी; इसी बीच स्वदीप्ति से तप्त सूर्य अपना तेजोमय आवरण फेंक, चन्द्रमा जैसा ही शीतल और सुनहरा हो पृथ्वी से मिलने कूद पड़ रहा था। पृथ्वी क्या कहे? मीनाक्षी क्या कहे? वह फिर दोनो आकर्षणों के बीच आ पड़ी। उसे सूर्य भी अच्छा लगा और चाँद भी। सूर्य का अहंकार मिट गया। चाँद में तो अहंकार था ही नहीं। एक ओर सिर झुकाये विश्व-विजेता खड़ा है, दूसरी ओर सदा ही पूजा करनेवाला पुजारी नमन करता हुआ खड़ा है।

'तू किरीट के साथ आयेगी या नहीं?' थोड़ी देर बाद सुरेन्द्र ने पूछा।

'तुम साथ ले जाओ तो?'

'तुझे दफ्तर में अच्छा नहीं लगेगा। मैं अपने थोड़े से काम में लगता हूँ तो तुझे अच्छा नहीं लगता। और दूसरा कारण बतलाऊँ?' सुरेन्द्र की आँखों में मस्ती दिखाई दी।

'कहो।'

'तू समीप हो तो मुझसे एक भी कागज न पढ़ा जाय।'

'ऐसा क्यों?'

'मैं तुझे ही देखा करूँ। काग़ज़ की ओर दृष्टि कहाँ से जाय?'

'बस, बहुत हुआ! मंत्री ऐसे होते होंगे?'

'दूसरे मंत्री कैसे होंगे इसका तो मुझे पता नहीं; परन्तु मैं तो ऐसा हूँ। और मंत्री न होऊँ तो भी ऐसा ही रहूँगा।' सुरेन्द्र सच कह रहा

था। उसके हृदय का नवीन प्रेम-संस्करण हो रहा था।

मीनाक्षी को यह बात बहुत अच्छी लगी। उसने अपनी विजय का अनुभव किया। वह लज्जित होकर मुस्कराई।

'इसलिए तू किरीट के साथ आना। मेरे साथ नहीं।'

मीनाक्षी का भी मन, धारा-सभा का यह कार्यक्रम देखने को हुआ। कार्यक्रम का महत्व सुरेन्द्र के कारण ही था। सुरेन्द्र वहाँ न होता तो मीनाक्षी धारा-सभा में शायद ही जाती।

'वहाँ बैठने की क्या सुविधा है ? मैंने सभा का व्याख्यानगृह देखा तो है, परन्तु अब भूल गई हूँ।'

सुरेन्द्र ने बैठने की सुविधा के बारे में विश्वास दिलाया साथ ही साथ कहा :

'पर देखना ; आज बिलकुल सादे कपड़े पहिनना।'

'क्यों ?'

'किरीट के साथ बैठेगी इसलिए कपड़े...'

'जाओ, मुझे आना ही नहीं ?'

'अरे, मैं तो हँसी करता हूँ। इसका कारण तो तू सभा में ही जानेगी। तुझे खयाल भी नहीं आ सकता कि मैं सादे कपड़ों का आग्रह किस लिए करता हूँ।'

समय होने पर सुरेन्द्र दफ्तर गया। उसके हृदय में आज अनोखा उत्साह था। उसकी पत्नी उत्साहपूर्वक उसका व्याख्यान सुनने आनेवाली थी। लोगों के हर्षनाद पर आज तक जीवित रहनेवाला यह राजनीतिज्ञ हर्षनाद से ऊब गया था, और मात्र पत्नी की दृष्टि का ही भूखा बन गया था। कितने क्षुद्र—हास्यजनक प्रसंग जीवन के महान कार्यों का कारण रूप बनते हैं !

दोपहर होते ही मीनाक्षी किरीट की प्रतीक्षा करने लगी। उसके मन ही ने प्रश्न किया : यह किरीट की प्रतीक्षा होती है, या सुरेन्द्र का

व्याख्यान सुनने की बेचैनी! उस दिन के बाद से सुरेन्द्र ने केवल किरीट के विरुद्ध बोलना ही नहीं छोड़ दिया था अपितु उसके सिद्धान्तों की चर्चा कर उनमें निहित मर्म स्वीकार कर सुरेन्द्र किरीट की याद करता रहता था। मीनाक्षी को जलाने के लिए तो यह नहीं था! सुरेन्द्र की उपस्थिति में जो शंका नहीं हो सकी, वह उसकी अनुपस्थिति में हो आई।

किरीट आया और फिर मिनाक्षी का हृदय धड़का।

'बहुत दिनों बाद मिले।' मीनाक्षी ने कहा।

●

३७

बाल ! पहाडो सहु खाक कीधा !
ते खाक चोळी ज शरीरमां आ।
विकराल दावा मुज त्याग धूणी ;
तेथी बचाय्युं नव कोई प्राणी। *

—कलापी

उछलते हृदय को—उछलते शरीर को—एक अंतिम महा प्रयत्न द्वारा दबाकर किरीट ने जवाब दिया :

'बहुत दिन हुए।'

'मैं दो-तीन बार आई थी, पर तुम तो थे ही नहीं।'

'मैं एक काम में व्यस्त था।'

'हाँ, उन्होंने मुझसे कहा था।'

दोनो प्रेमी एक दूसरे के सामने दीवाल बाँध रहे थे। सुरेन्द्र का उल्लेख कर मीनाक्षी ने इस प्रयत्न की सूचना दी। दोनो समझ गये। एक दूसरे के सामने अधिक देखा नहीं जाता था। थोड़ी देर चुप रहने

---

* जला पहाड़ सब भस्म किये !
वह भस्म रमाई इस शरीर में !
विकराल दावा मम त्याग धूनी
उससे बचा न कोई भी प्राणी !

के बाद मीनाक्षी ने पूछा :

'शरीर बिलकुल दुबला हो गया है।'

'योंही। इन दिनों नसीर के मुकदमे में काफी मेहनत पड़ी।'

'क्या वह मुकदमा अभी तक समाप्त नहीं हुआ ?'

'नहीं। अभी सुरेन्द्र की साक्षी बाक़ी है।'

'तुम दोनो पहले-पहले वहीं मिले थे न ?'

मीनाक्षी जिस स्थल का उल्लेख कर रही थी उसे किरीट न समझा हो ऐसा नहीं था।

'हाँ।'

'उन मुसलमान पति-पत्नी का प्रेम देखकर वह बहुत ही विचलित हो गये थे।'

'विचलित होने जैसी बात ही थी। अमीना की क़ब्र पर ताजमहल बनना चाहिये।'

'वह कहते थे कि तुम कोई मस्जिद बनवा रहे हो।'

'हाँ।' वह अधिक कहने जा रहा था। परन्तु इससे अधिक कुछ न बोला। उसकी इच्छा उस समाधि को प्रेमियों का तीर्थ स्थान बनाने की थी।

परन्तु, जिस तरह वह कुछ कहने की इच्छा करता हुआ भी रुक गया उसी तरह मीनाक्षी भी कुछ कहकर रुक गई :

'मेरा एक कहना न मानो ?'

'क्या ?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं।' मीनाक्षी भी अपने विचार को शब्दों द्वारा स्थूल रूप देते हुए रुकी।

'कहो तो सही !'

'ऊँहूँ। फिर किसी दिन कहूँगी।'

नौकर ने आकर ख़बर दी कि धारा-सभा में जाने का समय हो गया है।

'तुम जाओगी ?'

'हाँ।'

'मैं तुम्हें साथ ले चलने के लिए ही आया हूँ।'

'तुम जानेवाले हो यह जानकर मेरा मन भी हुआ।'

'आज का प्रसंग फिर मिलने का नहीं।'

'क्यों ? ऐसा क्या है ?'

'सुरेन्द्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण भाषण देनेवाला है।'

'ओहो ! यही न ?'

दोनो व्यक्ति साथ ही मोटर में बैठकर गये। भवन के बाहर लोगों की काफ़ी भीड़ थी। सर सुरेन्द्र की पत्नी के लिए भीड़ में से जगह की गई। विशाल व्याख्यान-गृह का एक-एक कोना मनुष्यों से पूरी तरह भर गया था। प्रेक्षकों के झरोखे में जरा भी जगह न थी। एक कोने में दो खाली कुर्सियों पर निगरानी रखता हुआ एक गोरा पुलिस-अफ़सर बगल के दर्वाजे से होकर मीनाक्षी और किरीट को उन कुर्सियों पर बैठा गया। सर सुरेन्द्र धारा-सभा के समक्ष, शिक्षकों का वेतन बढ़ाने और छोटे नौकर को किस तरह जीवन के आनन्द अधिक परिमाण में प्राप्त हो सकते हैं, इसकी एक योजना रखनेवाला था। सुरेन्द्र ने यह बात प्रकट कर दी थी इसलिए समाचार-पत्रों में इस सम्बन्ध की काफी चर्चा हो चुकी थी। पत्रकार सर्वज्ञ होते हैं। ऐसा हो ही नहीं सकता कि उन्हें किसी विषय की जानकारी न हो। फिलिप्पाइन्स की राज्य-व्यवस्था, ब्रेज़िल का विद्रोह, आस्ट्रेलिया के गेहूँ, या मुसोलिनी का कुटुम्ब : इनमें से कुछ भी पत्रकारों का अनजाना नहीं होता है। वे कैसर को भी सलाह देते थे और अभी महात्मा गान्धी को भी सलाह देते हैं। इससे यह साबित होता है कि उनके समान विद्वत्ता किसी अन्य में होती ही नहीं।

ये पत्रकार जिस मनुष्य को या जिस विषय को चाहें बड़ा बना-

सकते हैं। धारा-सभा का कोई साधारण सदस्य भोज में शराब के प्रभाव से यदि कुछ कह जाय तो उसके लिए वे सारे संसार में हो-हल्ला मचा सकते हैं और हो-हल्ला मचाने की खातिर बोलनेवाले प्रखर वक्ता को चाहें तो एक ही लकीर में निबटा सकते हैं। पत्रकारों ने सर सुरेन्द्र के भावी-कथन को इतना अधिक महत्त्व दे दिया था कि पत्रकारों के वाग्विलास से मुग्ध जनता आज उस कथन को सुनने के लिए एक पग हो रही थी।

'सुरेन्द्र जब बोलता है तो इसी तरह मनुष्यों को आकर्षित करता है।' किरीट ने उपस्थिति देखकर कहा।

मीनाक्षी को कालेज की एक सभा याद आई। उसने सुरेन्द्र को बोलते हुई एक बार सुना था।

सुरेन्द्र आया और सभा में एक उच्च स्थान पर बैठ गया। कोलाहल थम गया और उसके स्थान पर शान्ति छा गई।

'देखा ! एक ही व्यक्ति की उपस्थिति कितनी प्रभावोत्पादिका होती है !' किरीट ने कहा।

मीनाक्षी उसी का विचार कर रही थी। इन प्रभावोत्पादक पुरुषों में और दूसरों में क्या अन्तर होगा ?

मीनाक्षी ने सुरेन्द्र के आस-पास के व्यक्तियों को देखना शुरू किया। अपने और पराये मनुष्यों में काफी अन्तर रहता है।

'उनके पास में वह कौन है ?'

'वह दूसरे मंत्री हैं।'

'तुम्बा जैसा तो मुँह है।' मीनाक्षी मन में बोली।

'बाँई ओर कौन है ? मैंने एक बार देखा तो था।' मीनाक्षी ने पूछा।

'वह तीसरे मंत्री—मुसलमान हैं।'

'इतनी बड़ी डाढ़ी भी क्या ? मुँह तो सारा ढँक जाता है।' वह

मन ही मन बड़बड़ाई। सुरेन्द्र के साथ समानता करते हुए उसे रवि-बाबू की कलामय डाढ़ी में भी खामी दिखाई देती। उसने सुरेन्द्र के सिवा और सभी में कमी देखने का निश्चय किया था।

'उस यूरोपियन को देखा?' किरीट ने पूछा। वह मीनाक्षी के निश्चय को बढ़ावा दे रहा था।

'हाँ। एक बार वह हमारे यहाँ चाय पीने आया था।'

'एक्जिक्यूटिव काउन्सिल—धारा-सभा का सदस्य है।'

'पर नाक कितनी लम्बी! मानो हमें चोट पहुँचायेगा। ऐसा मालूम हो रहा है!' मीनाक्षी के मुँह से निकल गया।

'सुरेन्द्र कैसा सबसे अलग दिखाई पड़ता है।' किरीट ने मीनाक्षी के मन को आगे बढ़ाया।

हबशी को अपना पुत्र सब में अधिक रूपवान लगा था, इस कहावत में बहुत ही सत्य समाया हुआ है। जिसे हम अपना मानते हैं उसके रूप-गुण की खामियाँ हमें नज़र नहीं आतीं। पराये सुन्दर हों तो भी उन्हें देखनेवाले चश्मे का काँच या तो उठा हुआ देखते हैं या बैठा हुआ।

सर सुरेन्द्र तो किसी भी चश्मे में से सुन्दर लग सकता था। सुडौल चेहरा, आबदार आँखें, विशाल कपाल और सबकी आँखें चौंधियाती शान उसे सबसे अलग करती थी।

ऊपर बैठे हुए प्रमुख ने, कोई सुन न सके, ऐसी धीमी वाणी में कुछ कहा।

'यह तो प्रमुख हैं न?' मीनाक्षी ने पूछा।

'हाँ।'

'एकदम विदूषक!' चोगा और लम्बी टोपी पहिनकर बैठे हुए उस कद्रूप महापुरुष को नीचा गिराती हुई मीनाक्षी बोली।

सुरेन्द्र भाषण देने खड़ा हुआ। उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी।

उसकी आँखों में चापल्य था। उपस्थित जनता पर दृष्टि डाल, प्रमुख को सम्बोधित कर उसने बोलना शुरू किया। उसका एक ही—प्रथम—शब्द व्याख्यान-गृह के कोने-कोने में फैल गया। जिस तरह कोई कलाकार चित्र बनाता है, कोई वेदपाठी मंत्रोच्चार करता है इस तरह धीरे-धीरे गंभीर वाणी में उसने बोलना प्रारम्भ किया। सब कोई शांतिपूर्वक इस शब्द-चित्रकार के व्याख्यान को सुनने लगे। आरोह-अवरोह विस्तृत होते गये और शान्त हृदय धीरे-धीरे झूमने लगे। कलाकार जानता ही था। अब उसने शब्दों में रंग भरना शुरू किया, वाक्यावलियों में झंकार बढ़ाना शुरू की और अपनी वाणी में भावोचित संगीत और लय बढ़ाना शुरू की। श्रोतावर्ग को उस लय पर उछलने में मजा आने लगा। वाणी का सागर लहराने लगा। प्रत्येक हृदय परवश हो तरंगित हो उठा। वीर, करुण और हास्य की अनियन्त्रित लहरों के साथ एकाकार हो, उछलते हृदय घड़ी दो घड़ी, सुध भूल, उछलते ही रहे। भावों के पराकाष्ठा पर पहुँचने पर वाग्धारा भी पराकाष्ठा पर पहुँची और सागर को तरंगित करनेवाला जादूगर मंत्र समाप्त कर बैठ गया।

उद्वेलित हो रहे समुद्र की तरङ्गों के शान्त होने में समय लगता है। मन्त्र-मुग्ध प्रेक्षकों को ऐसा नहीं मालूम होता था कि मंत्र अभी बन्द हो गया है, परन्तु उनकी आँखों ने तांत्रिक को बैठते देखा और अकस्मात कानों को बधिर करती हुई तालियों की गड़गड़ाहट चारों ओर फैल गई और वह किसी भी तरह बन्द न होती थी।

सुरेन्द्र ने अपना व्याख्यान शिक्षकों के आन्दोलन के इतिहास से प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उसने शिक्षकों की कठिनाइयों का वर्णन किया। उन्हें मिलनेवाले वेतन और उनके उत्तरदायित्व के बीच असंगति दिखाई। ऊँचा वेतन पानेवाले शिक्षकवर्ग की निरर्थकता भी उसने समझाई। साथ ही साथ ऊँचा वेतन पानेवाले सम्पूर्ण नौकर

वर्ग की निरर्थकता का उल्लेख किया और अन्त में अपना पूरा वेतन गरीब वर्ग के लिए देने का निश्चय प्रकट कर दूसरों से भी ऐसा ही करने की प्रार्थना कर वह बैठ गया।

मीनाक्षी भी स्तब्ध हो गई थी। चारों ओर से सुनाई पड़ती तालियों की गड़गड़ाहट में उसे भी अपनी तालियों की आवाज़ मिला देने की उत्कण्ठा हो आई, परन्तु शिष्टाचार की खातिर उसने अपनी वह इच्छा रोकी। किरीट भी पागल होकर तालियाँ बजा रहा था।

बड़ी कठिनाई से, प्रमुख की बार बार की गई विनय को मानकर श्रोतागण शान्त हुए। अन्त में प्रमुख ने घोषित किया कि 'सर सुरेन्द्र के बोलने के बाद किसी को भी बोलने देना पाप रूप है। सुन्दर चित्र में धब्बे डालने जैसा है, इसलिए इस प्रश्न की विशेष चर्चा दूसरे दिन की जायगी।'

लोग भी ऐसा ही समझते थे। सब उठकर जाने लगे। भीड़ में जाना ठीक न समझकर मीनाक्षी और किरीट थोड़ी देर बैठे। किरीट ने कहा :

'सुरेन्द्र एक अद्वितीय वक्ता है। संसार में भी उसकी जोड़ मिलना मुश्किल है।'

मीनाक्षी को यह गुण-गान अच्छा लगा तो भी उसने कहा :

'इतनी अतिशयोक्ति कहीं हो सकती है!'

'मैं सच कहता हूँ। कालेज में था तभी से मैं उसकी भाषणशैली का उपासक हूँ।'

'इसीलिए उनके खिलाफ लिखते होगे।' हँसकर मीनाक्षी बोली।

'अब विरुद्ध लिखना भी नहीं रहा, वह अब ग़रीबों में मिल गया!'

मीनाक्षी कुछ चुप रहकर बोली :

'तुम पहले भी कभी उनके विरुद्ध नहीं बोले। मुझे, उस दिन गाड़ी में तुमने जो कुछ कहा था, याद है!'

'अब वह केवल महान वक्ता नहीं रहा। वह एक महान पुरुष बनने की तैयारी में है।'

'और तुम?'

'मुझे महान नहीं बनना। मुझमें वह शक्ति नहीं।'

'झूठ बोलते हो।'

'क्यों?'

'तुम पहले से ही उनकी प्रशंसा क्यों किया करते हो?'

'क्योंकि वह प्रशंसा का पात्र है।'

'उस दिन तुमने मुझसे क्या कहा था?'

'किस दिन?'

'तुम्हारे घर मैं तुमसे मिलने आई थी तब?'

'वह सब याद न करो तो!'

'नहीं करती हूँ, पर मैं भूली नहीं हूँ।'

'वह भूल जाओ और मुझसे अधिक योग्य सुरेन्द्र को हाथ से मत जाने दो।'

'तुमने कथनानुसार क्यों नहीं किया?'

किरीट को ऐसा लगा मानो राख में से वे दिन फिर खड़े हो रहे हों। उसने भूतकालीन किरीट को आर्जव-पूर्ण स्वर में बोलते हुए सुना:

'मैं अपना सर्वस्व—अपने प्राण भी—तुम्हारे चरणों पर रख दूँगा।'

उसने कान बन्द कर लिये। मस्तक को झटका दे, उस चित्र को लुप्त करता हुआ बोला:

'क्योंकि, मेरी अपेक्षा और कोई अधिक योग्य निकल आया।'

'कौन, सुरेन्द्र?'

'अवश्य। तुम नहीं देख सकती कि इस भवन में जितने हैं सुरेन्द्र उन सब में श्रेष्ठ है!'

यह कौन कह सकेगा कि सुरेन्द्र की प्रशंसा करने में किरीट अपना

सर्वस्व—अपने प्राण—मीनाक्षी के चरणों पर नहीं चढ़ा रहा था ? इसी-लिए वह आज आया था। इसीलिए वह मीनाक्षी को यहाँ लाया था, इसीलिए उसने सुरेन्द्र का उच्चतम गौरव दिखलाने का प्रसंग छेड़ा था। सुरेन्द्र एक अद्वितीय वक्ता था। उस गौरवशाली पद में आज गरीबों की हाय मिलाने का बड़प्पन उसने खास तौर से दिखाया था।

'अब उठना है ? या सर सुरेन्द्र की प्रशंसा ही करते रहना है ?' सुरेन्द्र ने किरीट के कन्धे पर हाथ धरकर उसे चौंकाया। दोनो व्यक्तियों के पीछे खड़ा होकर सुरेन्द्र कभी से अपनी प्रशंसा सुन रहा था। उसे आश्चर्य हुआ और आनन्द हुआ, परन्तु सारा व्याख्यान-गृह खाली हो गया था इसलिए एक दूसरे को धोखा देने—एक दूसरे को सुखी करने का प्रयत्न करनेवाले इन पुराने स्नेहियों को वहाँ से हटाये बिना छुटकारा न था।

'तुम कब से खड़े हो ?'

'मैं आज बैठा ही कब हूँ ? पर अब हमें यहीं बैठ रहना है या घर चलना है ?'

'मुझे तो यहीं बैठ रहना अच्छा लगता है। अपने भाषण के समय मुझे साथ क्यों नहीं लाते थे ?' चलते-चलते मीनाक्षी ने कहा।

'तुम्हें अच्छा लगा ?'

'वाह ! फिर अपनी प्रशंसा सुननी है, क्यों ?'

बाहर निकलते ही सुरेन्द्र की जय-ध्वनि की गर्जनाओं से बात रुक गई। सुरेन्द्र ने सबको नमस्कार किया। मीनाक्षी मोटर में बैठी। किरीट पीछे खिसककर वहाँ से जाने की सोच रहा था कि सुरेन्द्र ने उसका हाथ पकड़ मोटर के भीतर मीनाक्षी की बगल में बैठा दिया। जनता किरीट से अपरिचित नहीं थी। ग़रीब की हाय सुननेवाले को गरीबों ने पहिचाना और उसके नाम की हर्षध्वनि की। किरीट और सुरेन्द्र को एक साथ बैठे देख गरीबों को अपनी विजय दिखाई दी।

सुरेन्द्र के मंत्रित्व में ग़रीब-शिक्षकों के साथ न्याय किये जाने की संभावना उत्पन्न होने में लोगों ने किरीट को ही कारण समझा और इसलिए हर्ष-ध्वनि द्वारा उसका स्वागत किया।

परन्तु किरीट का हृदय खाली हो गया था। ऐसा मालूम पड़ रहा था कि उसकी छाती में हृदय कुचल गया हो। उसे ध्यान ही न रहा था। हर्षनाद का नमस्कार द्वारा जवाब देने के लिए उसके हाथ भी न उठे।



३८

गमीना जाम भी हरदम,
धरी माशुक तने गरदन :
न खंजर थी कर्या टुकडा,
न जामे इश्क पायो वा ! *

—कलापी

'किरीट, मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ !'

'किसलिए !'

सर सुरेन्द्र और मीनाक्षी के साथ उनके घर जा, थोड़ी देर बैठ, किरीट वापस जाने लगा। सुरेन्द्र उसे अपनी मोटर में बैठाने आया। साथ आते-आते दोनों में बातचीत हुई।

'मैं यह समझ रहा था कि तू मीनाक्षी पर फिर से अपना जाल बिछा रहा है।'

किरीट के रोम-रोम में आग लग गई। वह कुछ बोलने जा रहा था; परन्तु उससे बोला न गया। इसी बीच सुरेन्द्र ने स्पष्टीकरण किया :

---

* गमीना जाम भी हरदम,
रखी माशूक (के) आगे गर्दन :
न खंजर से किये टुकड़े,
न जामे इश्क पिलाया वाह !

'परन्तु मेरा सन्देह ग़लत निकला !'

'किस तरह ?'

'तू तो मुक्तकंठ से मेरी प्रशंसा कर रहा था ।'

'वह मैं मीनाक्षी पर जाल बिछाता हूँ । ज़रा समझ !' किरीट ने घृणा से कहा ।

'मैं नहीं मानता । मेरी धारणा से तेरा मन कहीं अधिक उदार है...'

'भूल न करना । मीनाक्षी पर मैं ऐसा जाल बिछा रहा हूँ कि वह तेरे जैसे को भी चाहने लग जाय ।'

'क्यों ?'

'मैं तेरे जैसा नहीं । मैं तो मीनाक्षी को सुखी देखना चाहता हूँ । मुझसे क्षमा मत माँग । वह तुझे कभी मिलने की नहीं । तेरी और भी प्रशंसा करूँगा । पत्र में तेरा भाट बनूँगा ; परन्तु तेरे लिए नहीं, मीनाक्षी के लिए : मीनाक्षी को अपने पति में कमी न दीखे इसलिए ।'

सर सुरेन्द्र को क्रोध आया और आते ही अदृश्य हो गया ।

'मेरे बारे में ऐसा क्यों सोचता है ?'

'क्योंकि मीनाक्षी को मुझसे छीन लेने में तूने बड़ी नीचता की ।'

'मैंने क्या नीचता की ?'

'कुछ नहीं । इस बात को बंद कर । मैं तेरी पत्नी को छीनना नहीं चाहता । तू सुख से सोना । आगामी महीने से कोई तेरा वेतन भी नहीं लूट ले जायगा । दीनानाथ से मैंने भी कहा है और तू भी कह देना ।'

'दीनानाथ को तू पहचानता है ?'

'वह मेरा ही आदमी है । तेरे आस-पास मेरे कई आदमी हैं । तेरा जीवन विषमय बना देने की मुझमें सामर्थ्य है, परन्तु मीनाक्षी बीच में आती है इसलिए लाचार हूँ ।' इतना कहकर किरीट आगे बढ़ा ।

सुरेन्द्र ने उसका हाथ खींच उसे बग़ीचे में एकान्त की ओर लिया और कहा :

'इस तरह जाने का नहीं। मुझसे कह कि मैंने क्या नीचता की। मैं घमण्डी हूँ, कीर्तिकांक्षी हूँ, यह मैं अब समझता हूँ; परन्तु तू मुझे नीच कहता है तो मेरी नीचता बता और तब जा।'

'तू मुझसे मत पूछ। अब मैं कभी तेरी राह में नहीं आने का। मेरा कहा भूल जा।'

'नीचता का आरोप मैं भूल जाऊँ! तू दुश्मन हो तो भी मैं तुझसे न्याय माँगता हूँ। मेरी नीचता का एक भी उदाहरण बतला।'

'जैसे तू जानता ही न हो!'

सुरेन्द्र की आँखें विस्फारित हो गईं।

'किरीट, किरीट, मैं तेरे पाँव पड़ता हूँ। तू मुझसे कह। मुझ में नीचता हो तो मैं मीनाक्षी को प्यार करना छोड़ दूँ। मेरा प्यार उसके योग्य न रहे।'

किरीट थोड़ा रुका। मीनाक्षी के सुख की कामना में उसके पति पर झूठा-सच्चा आरोप लगाना भी विघ्नरूप लगा।

'कुछ नहीं सर सुरेन्द्र। जैसे आपको सन्देह हुआ था वैसे मुझे भी सन्देह हो गया था। अब उसे मैं अपनी स्मृति में से उखाड़ फेंकता हूँ।'

'तेरी स्मृति में से उखाड़कर मेरी स्मृति में रोपने के लिए, क्यों है न? किरीट, यह 'सर सुरेन्द्र' और 'आप' का शिष्टाचार छोड़कर, तू मुझसे कह दे नहीं तो तेरे पीछे ही फिरता रहूँगा।'

किरीट डरा कि सर सुरेन्द्र कहीं पागल तो नहीं हो गया? उसने नम्रता से कहा :

'देख सुरेन्द्र, वह मेरी कल्पना थी। बात न थी।'

'जो कुछ हो। एक क्षण भी रुके बिना कह दे।'

'मेरी परीक्षा पूरी न होने दे, तार से बुलवाकर परीक्षा-फल में मेरा क्रम नीचा उतरवा, मीनाक्षी के लिए अयोग्य ठहराने की युक्ति तूने रची थी या किसी दूसरे ने ! बोल ! इससे अधिक नीचता और क्या हो सकती है ?'

सुरेन्द्र ने अभी तक पकड़ रखा किरीट का हाथ छोड़ दिया।

'किरीट यह तू ने इतने वर्षों बाद क्यों पूछा !'

'पूछने में वर्षों की बाधा कैसी ?'

'क्योंकि इसमें मेरी नीचता न थी ऐसा साबित करनेवाले गवाह अब जीवित न रहे।'

'कौन से गवाह !'

'मेरे पिता, मीनाक्षी के पिता और मेरे मुनीम।'

'इनका इसमें क्या लेना-देना ?'

'किरीट, वह तार आया तभी से मुझे ऐसा लगता रहता था कि तेरा मुझ पर सन्देह होगा। तेरी तरह मैं भी एक प्रश्न-पत्र लिखे बिना ही रहने देता, परन्तु हमारे परिचित प्रधान-निरीक्षक के आग्रह से मुझे थोड़ा-बहुत लिखना पड़ा। घर आकर पूछताछ करने पर ऐसा पता लगा कि तेरी मा की स्थिति का विचार कर, अधिक समझदारी काम में ला, मुनीम ने ही किसी के कहे बिना तुझे तार किया था। मैं तुझे कैसे विश्वास दिलाऊँ कि इसमें मेरा हाथ किसी तरह न था !

'मुझे किसी की गवाही नहीं चाहिये। तू कहता है इतना ही काफी है।'

'इतना बस नहीं है। मेरी नीचता के विरुद्ध सबूत देनेवाला अब संसार में केवल एक ही व्यक्ति है।'

'कौन !'

'मीनाक्षी।'

"किस तरह ?'

सुरेन्द्र रुका। थोड़ी देर बाद उसने कहा :

'हम घर में वापिस चलें। मीनाक्षी के मुँह से ही तू यह बात सुन।'

'सुरेन्द्र तू नीच हो या उदार, इसकी अब मुझे पर्वाह नहीं। मैंने आज ही ऐसा करने की प्रतिज्ञा कर ली है कि मीनाक्षी तुझे प्यार करती रहे। फिर अब क्या ? अब हम विलग हों।'

'नहीं। मैं तुझे भीतर ले ही जाऊँगा।'

'ओ मूर्ख, मीनाक्षी को अब अपनी लड़ाई में सम्मिलित नहीं करना है।'

'तो मुझे कहने दे। तू जानता है कि मैंने मीनाक्षी के साथ विवाह करने की अस्वीकृति लिख दी थी ?'

किरीट को आश्चर्य हुआ।

'तुझे आश्चर्य होगा, तू नहीं मानेगा, परन्तु यह सत्य बात है कि परीक्षा की कठिनाई से मैंने लाभ उठाया ही नहीं।'

'तो फिर तूने विवाह कैसे किया ?'

'कहूँगा तो तुझे बुरा लगेगा।'

'बुरा लगने जैसा अब रहा ही नहीं।'

रुकते-रुकते सुरेन्द्र ने कहा :

'तेरी मा को क्षय हो गया था। सारा परिवार इस बीमारी से घबरा गया, और तुझे भी यह रोग होने की सम्भावना है, ऐसा लगने पर मीनाक्षी ने मेरे साथ विवाह करने की सम्मति दी। तुझे पूछकर निश्चय करना है ?'

'मीनाक्षी के पास से यह सब कहलवा कर तू मुझे नीच बनाना चाहता है ? सुरेन्द्र, मैं तेरी बात मानता हूँ।'

'तू ने थोड़े दिन पहले मुझे नीच कहा होता तो मैं जवाब भी न देता, परन्तु अब मैं यह आक्षेप सह नहीं सकता।'

'क्यों ?'

'मीनाक्षी को अब मैं इतना चाहता हूँ कि उसके पति की हैसियत से मैं अपनी ज़रा भी नीचता सह नहीं सकता।'

किरीट ने ऐसा आक्षेप लगाने के लिए क्षमा माँगी। दोनों व्यक्ति अलग हुए। यह साबित होने पर कि सुरेन्द्र नीच नहीं था, किरीट के हृदय की रिक्तता कम न हुई। उसकी व्यथा तो उससे अधिक बढ़ गई।

अब क्रोध करने का भी साधन नहीं रहा।

विचार-शून्य हालत में ही वह घर पहुँचा।



३६

ऊंचा आकाश, ऊंची बादळी, अली कोयलडी ?
कांइ ऊंचा तारा रणवास ;
मीठडुँ टहूकजे रे अली कोयलडी ! *
—न्हानालाल

चमेली भी आज किरीट से नहीं बोली। रोज तो दौड़कर सामने आती थी। आज वह खिड़की में बैठी उसके बाहर देखा ही करती रही। किरीट का कौन ? पारे के बिखरे हुए दानों की तरह उसे कोई छुएगा नहीं और न वह किसी को छू सकेगा। प्रेम के लिए प्रियतमा को छोड़ा ; जीवन को टिकाये रखनेवाला बैर भी उसी प्रेम के लिए छोड़ा। अब हृदय किस पर जीयेगा ?

सन्ध्याकाल की लाली खिड़की से बाहर दीख रही थी। चमेली को उसमें दर्शनीय क्या लगता होगा ? संसार में अन्तिम प्रेमी या अन्तिम बैरी के मर जाने पर उसकी भस्म भी नदी में बहा आनेवाले मनुष्य के एकाकीपन-सा एकाकीपन किरीट को मालूम हो रहा था। भयानक निराशा में उसने आवाज़ दी :

---

* ऊँचा आकाश, ऊँचा बादल, अलि कोकिला !
कुछ ऊँचा तेरा रनिवास ;
मीठा कूकना री अलि कोकिला !

'चमेली !'

चमेली बोली नहीं। उसने दृष्टि जहाँ की तहाँ रहने दी।

'चमेली ! तू बोल तो सही ! आज मैं अपने हृदय को भस्म कर आया हूँ।'

चमेली तब भी नहीं बोली।

'बहरी तो नहीं हो गई ?'

सच, चमेली मानो बहरी हो गई थी।

किरीट का एकाकीपन असहनीय हो गया। मा की मृत्युवाली रात को जिस तरह वह अपने हृदय पर अधिकार न रख सका था, उसे डर लगा कि वैसे ही आज भी हृदय बह निकलेगा। पुरुष के आँसू शीघ्र नहीं आते। आते हैं तो वह उन्हें रोक रखने में अपना पूरा बल लगा देता है। आँसू का डर लगते ही वह चौंककर हिंडोले पर से उठा और कमरे में इधर-उधर घूमने लगा।

उसकी दृष्टि दीवाल पर पड़ी। दीवाल पर कुछ तसवीरें लटक रही थीं और एक तसवीर पर पुष्पमाला टँगी थी। फाँसी की सजा पाया हुआ अपराधी कंकड़ उछालकर समय बिताता हो, इस तरह किरीट ने कहा :

'हाँ, समझ गया, तू क्यों नहीं बोलती है...तो तू भी अब मुझे छोड़ जानेवाली है।'

चमेली अदृश्य हो रहे प्रकाश को ही देख रही थी। जो दिन-भर बोले बिना रह ही नहीं सकती, वह लड़की यदि इस तरह न बोले तो उसे बोलते हुए सुनने की बान पड़े हुए किरीट को मुश्किल पड़ना स्वाभाविक था।

'चमेली, मुझे प्यास लगी है।'

चमेली तत्काल खड़ी हुई और किरीट की ओर मुँह किये बिना ही भीतर जाकर पानी ले आई। किरीट फिर हिंडोले पर बैठ गया।

पानी देते समय भी चमेली ने किरीट की ओर नहीं देखा। बालकों की चित्रकारी देखकर जैसे कोई पागल पुरुष हँसता है, इस तरह किरीट हँसा।

'चमेली, तू भी विचित्र है। यह मैंने आज ही जाना कि तू इतनी लज्जाशील होगी।'

एक ओर देखती हुई चमेली वैसी ही खड़ी रही उसका सिर्फ आधा हाथ खुला था उसे भी उसने ढँक लिया।

पानी पीकर किरीट ने प्याला आगे किया। चमेली ने उसे लेने के लिए हाथ आगे बढ़ाया। प्याला जाने कैसे इतना भारी हो गया कि लेते-लेते वह चमेली के हाथ से गिर पड़ा। पानी जमीन पर ढुलक गया। चमेली प्याला लेने नीचे झुकी और किरीट ने पूछा :

'फिर किसकी तसवीर पर तूने हार डाला?'

इस समय चमेली के मुँह में जबान ही न थी। उत्तर दिये बिना ही यंत्रचालित पुतली की तरह प्याला उठाकर वह अन्दर चली गई।

'तू सोचती होगी कि जब तक कहूँगी नहीं तब तक मुझे खबर ही न होगी, क्यों?'

चमेली की अदृश्य होती हुई परछाईं से यों कहता हुआ किरीट खड़ा हुआ, और तसवीरों के पास जाता, बोला :

'बहुत संभव है मधुकर! या फिर पीयूष!'

परन्तु तसवीरों के पास जाने पर बढ़ते हुए अन्धकार में उसे स्पष्ट दिखाई नहीं दिया। उसने अपनी आँखें मलीं और तसवीर ऊँची उठाकर देखी।

'अरे ओ छोकरी! यह तो तूने भूल की! किसके बजाय किसकी तसवीर को हार पहना दिया!' क के बदले ख लिखनेवाले विद्यार्थी की भूल देखकर जिस तरह शिक्षक हँसता है उस तरह हँसते हुए किरीट ने आवाज़ दी।

दरवाज़े के पीछे खड़ी हुई चमेली का हृदय धक्‌धक् करने लगा। उसने छाती पर हाथ रख उस धड़कन को शान्त करने का प्रयत्न किया।

'कहाँ गई? चल, इधर आ। तेरी भूल बताऊँ।' चौखट तक आई हुई चमेली का हाथ पकड़ उसे तसवीरों तक घसीट कर लाता किरीट बोला।

'भूल नहीं।' बड़ी कठिनता से खिंच आती चमेली इतनी देर में पहली बार बोली। किरीट चौंका। सूने घर में एकाएक सारंगी बज उठने की तरह चमेली की आवाज़ सुनकर उसने उसका हाथ छोड़ दिया।

'क्या कहती है?'

नीचे देखती हुई चमेली ने फिर कहा:

'भूल नहीं।'

'अरे, यह तो मेरी तसवीर है!'

'चमेली फिर चुप हो गई, मौक़ा पाते ही वह फिर खिड़की के पास जा खड़ी हुई। हवा से प्रतिक्षण उड़नेवाले आँचल को खींचती, बालों की उड़ती हुई लटों को सिर्फ़ अंगुलियों से सँभालती, खिड़की और आकाश की गहनता के बीच खड़ी चमेली, गहनता में उड़ने का विचार करनेवाली परी जैसी दिखाई देती थी।

'अरे, पर वह तो मेरी तसवीर है! हार बदल डाल। नासमझ किरीट फिर उसके पास आ, उसके कन्धे पर हाथ रखकर, कहने लगा। चमेली ने किरीट का हाथ, उसके सामने देखे बिना ही हटा दिया। किरीट ने अधिक ज़ोर से उसके कन्धे पर हाथ रखा। चमेली ने किरीट की ओर अपना मुँह फिराया। परन्तु मुँह की अपेक्षा आँखें जल्दी घूमीं और किरीट की आँखों में समा गईं। मुख पर मुस्कराहट थी; परन्तु नेत्रों में तो सारे शरीर का सौन्दर्य एकत्रित हो झाँकने लगा था। एक

क्षण बाद ही वह मुँह और नेत्र फिर घूम गये और खाली आकाश में टिमटिमाते एक दो तारों को देखने में व्यस्त हो गये।

किरीट ने कन्धे पर से हाथ इस तरह उठा लिया मानो जल गया हो। वह चमेली का भाव समझा। जल्दी से हटकर वह हिंडोले पर जा बैठा। तकिये पर सिर रख उसने आँखें मूँद लीं; एक ओर उसका हाथ छोड़े मीनाक्षी खड़ी थी, दूसरी ओर उसका हाथ पकड़े चमेली खड़ी थी और अमीना उड़ती-उड़ती वहाँ आकर हँसने लगी। त्रिया-राज्य में फँसे हुए किसी अवधूत की भाँति वह घबरा गया। उसने आँखें खोल लीं। चमेली एक दीया रखकर भीतर जा रही थी। दीये का प्रकाश उस तसवीर पर पड़ रहा था और किसी जमाने में खिचवाई हुई किरीट की तसवीर पर वह पुष्प हार लटक रहा था।

किरीट जोर-जोर से झूलने लगा। एक घण्टा ऐसे ही बीत गया।

'चलोगे?' कमरे के दरवाजे के पीछे छिपकर चमेली बोली।

रोज निकट आकर भोजन के लिए बुलानेवाली चमेली आज किरीट को दूर से बुला रही थी। उसके परिमार्जित कण्ठ-स्वर में मर्यादा प्रवेश करती हुई सुनाई दी।

बिना बोले वह थाली पर जा बैठा। नित्य का सादा भोजन आज न था। बोल-बोलकर सिर खपा देनेवाली चमेली आज एक अक्षर भी नहीं बोलती थी। जिसे सिर ढँकने का भी भान न था, वह चंचल युवती आज घड़ी-घड़ी सिर पर आँचल खींचकर ढँक रही थी—इतना ही नहीं, परन्तु सारा मुँह ढँक देने की इच्छा होती हो, इस तरह अपने कपाल पर आँचल खींचा करती थी।

घूँघट निकालने की प्रथा बुरी है, परन्तु इस प्रथा का बहिष्कार करने से पहले मुग्धाओं से पूछना चाहिये। शरीर और मुँह को छिपा देने की तीव्र लालसा किस ज्ञात यौवना में नहीं होती?

किरीट को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसे स्वप्न में भी खयाल न

था कि चमेली उसे चाहती होगी। उसके मन में यह बात असम्भव थी कि किसी भी स्त्री का उसके प्रति प्रेमाकर्षण हो सकता है। तिसपर इस चमेली के पागलपन ने उसे बहुत ही चौंकाया।

चमेली तो कुछ बोले-चाले बिना ही अपने बिस्तरे पर सो गई थी। उसकी बातों और उसके हास्य से गूँज उठनेवाला घर इस समय शान्त हो गया था।

'मैं किसलिए चमेली को ढूँढ़ने गया?' किरीट सोचने लगा। वर्षों पहले चमेली के पिता द्वारा अपने लिए खर्च की गई रक़म वापिस करने की याद किरीट को आई और वह उन्हें खोजने गया। चमेली की माँ ने यों ही एक समय, चमेली को कहीं भी ब्याह दिये जाने के जो प्रयत्न हो रहे थे, उनके बारे में कहा। किरीट ने चमेली को बहुत वर्षों पहले देखा था। उपकार का बदला चुकाने, या चमेली की माँ का दुःख निवारण करने के लिए, किरीट ने चमेली को बचाने की तजवीज की। साधारण तौर से अनुसन्धान करने पर उसे पता चला कि चमेली को उड़ा ले जाने की योजना बनाई गई है।

किसलिए उसने चमेली को बचाया? उसने उसके जीवन-प्रवाह को कैसे रोका था? क्या वह अब भी रोकेगी?

परन्तु अब उसका जीवन रहा ही कहाँ? अन्धकार में भटकते हुए पृथ्वी के पीछे दौड़नेवाले किसी टूटते हुए तारे के समान वह अब घिसकर लुप्त हो जायगा। अब प्रेम कैसा? दावानल से भस्म हो गये हृदय में हरियाली का अंश भी कहाँ था?

परन्तु चमेली उसका पीछा न छोड़े तो? इस तरह वे दोनों कब तक रह सकेंगे?

हिंडोले पर पड़े-पड़े सोचते हुए किरीट को मालूम हुआ कि चमेली जाग रही है। चमेली बिस्तर पर से उठी और बिना किसी तरह की पाँवों की आहट किये हिंडोले के पास आ खड़ी हुई। किरीट ने आँखें

मूँद लीं—थोड़ा-बहुत देखा जा सके इस तरह आँखें मूँदना सभी को आता है। चमेली कुछ क्षण किरीट के पास खड़ी रही। वहाँ से तसवीर के पास गई। धीरे से तसवीर को उतारकर वह अपने बिस्तरे पर जा बैठी। चुम्बन की स्पष्ट-ध्वनि रात्रि की शान्ति को भंग करती हुई सुन पड़ी—किरीट हँसा—तीसरी पीढ़ी के युवक का प्रेमोन्माद देखकर कोई पितामह जैसे हँसता है वैसी हँसी किरीट की थी, परन्तु तसवीर के काँच का तड़कना जब उसने सुना तो उससे बोले बिना नहीं रहा गया।

'चमेली, क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।'

'तुझे कुछ लगा तो नहीं ?'

'नहीं।'

'क्या करती थी ?'

'कुछ भी नहीं।'

'तब काँच तड़कने जैसी आवाज़ क्या थी ?'

'वह तो खिड़की खड़खड़ाई होगी।'

'चमेली, जरा इधर आयेगी ?'

चमेली डरी। कोई भी सम्बन्ध एकाएक निकटता प्राप्त कराता है तो उस सम्बन्ध में आनेवाले को पहले तो डराता ही है, परन्तु उस डर में भी कोई ऐसा विचित्र आकर्षण होता है कि काँपते हुए भी प्रेमी एक दूसरे से लिपटते हैं। आते हुए चमेली का पाँव काँपा तो भी वह किरीट के पास आई।

'आ, इधर बैठ।' किरीट ने चमेली को हिंडोले पर बैठाया।

पहले एक बार किरीट ने चमेली को ऐसे ही बैठाया था। चमेली अतिशय सिकुड़कर हिंडोले पर बैठी। किरीट अपने नन्हें मित्र को समझाने लगा :

'चमेली !'

चमेली में जवाब देने की शक्ति न थी।

'तुझे कुछ समझ भी है ?'

चमेली नीचा मुँह किये बैठी ही रही।

'तुझमें ज़रा भी बुद्धि होती तो तू ऐसी मूर्खता करती ?'

किरीट ने उसका हाथ पकड़ उसे झकझोर डाला :

'अरे कुछ बोल तो सही। जवाब तो दे !'

'परन्तु मैंने किया क्या है जो ऐसा कहते हो ?' अन्त में चमेली बोली।

यह उत्तर सुनकर किरीट स्तब्ध रह गया। अभी तो इस छोकरी को ऐसा ही लगता है कि उसने कुछ किया ही नहीं !

'तूने किसकी तसवीर को माला पहनाई ?'

'तुमने देखा तो है न ?'

'अरी पगली, उन खिलते युवकों को छोड़ तू मुझ बूढ़े पीपल से क्यों लिपटने आई ?'

'मैं तुमसे लिपटने आई हूँ ?'

'तब मेरी तसवीर को माला पहिनाने का अर्थ क्या है ?'

'यह मैं जानती हूँ और जानती है तसवीर।'

'याने ?'

'मैं तसवीर के साथ विवाह करनेवाली हूँ।' चमेली अभी तक नीचे ही देखा करती थी, परन्तु अब वह नीचे की ओर देख कर हँस पड़ी। उसने हाथ-पाँव एक ही स्थिति में रखे थे ; वे वैसे के वैसे ही रखे रह गये।

किरीट उत्तर सुनकर, किसी विचित्र प्राणी को देख रहा हो इस तरह, वह चमेली को सिर से पाँव तक देख गया।

'तेरे हाथ में क्या हुआ है ?' एकाएक किरीट बोल उठा।

'कुछ नहीं।'

'मुझे देखने दे।' किरीट ने उसका हाथ उठाया।

चमेली के हाथ लोहू से भर गये थे।

'इतना अधिक लोहू निकलता है, इसका तुझे ध्यान ही नहीं?'

'यह लोहू नहीं। यह तो कुंकुम है।'

'बहुत हुआ अब। समझदारी से काम ले और मुझे दवाई करने दे।'

किरीट ने जल्दी से लालटैन ले एक शीशी, रुई और कपड़े के टुकड़े निकाले। उन्हें ला चमेली का रक्त-रंजित हाथ पोंछ, दवाई लगा पट्टी बाँधी। पट्टी बाँधते-बाँधते किरीट ने फिर पूछा :

'मैंने जो कहा उसे तू समझी?'

'नहीं।'

'देख, इन दो-तीन महीनों में तो मेरे बाल सफेद हो गये।'

किरीट ने सोचा कि किसी भी प्रेमिका को डराने के लिए सफेद बालों की धमकी ही काफी है।

'तो इससे मैं क्या करूँ?'

'मैं यहाँ से बहुत दूर चला जानेवाला हूँ।'

'मुझे साथ ले चलोगे तो मैं चलूँगी।'

'मेरे पास जरा भी धन नहीं।'

'तो क्या किया जाय? जितना होगा उतने से ही काम चलाएँगे।'

'और इतना सब करके भी तू मुझसे विवाह करेगी। यही तेरा कहना है न?' जरा चिढ़कर किरीट बोला।

'मैंने तुम्हारी बात ही कब की है? मैं तो तसवीर की बात करती हूँ।'

किरीट थक गया। ऐसा कभी हुआ ही नहीं कि स्त्री के साथ वाद-विवाद करने में पुरुष कभी हारा न हो। स्त्री पहले बोलती नहीं; पुरुष

ही उसे बोलने के लिए प्रेरित करता है, परन्तु एक बार बोलना शुरू करने के बाद, पुरुष की इस भूल का बदला चक्रवृद्धि व्याज सहित वापिस करने का सामर्थ्य स्त्री में है।

'तू जान! तुझे जो अच्छा लगे सो कर!' थककर किरीट तकिये पर पड़ गया। उसके हृदय में अभी तक इतनी तटस्थता थी मानो इस बातचीत का केन्द्र-स्थान किरीट नाम का कोई अन्य व्यक्ति हो, परन्तु एकाएक तटस्थता चली गई। उसके मुँह पर कोई तूफानी तरुणी चुम्बन पर चुम्बन अंकित कर रही थी।

'हाँ-हाँ, चमेली! यह क्या ऊधम करती है?' चमेली के चेहरे को हटाते हुए वह बोला।

'अब ऐसा कहते हो? एक बार हाँ कहके अब मुझे रोकते क्यों हो?' चमेली बोली।

'मैंने हाँ कब कहा?'

'क्यों? मुझे अच्छा लगे सो करने की छुट्टी दी है न? अब तुम्हारा कहा कौन माने?'

पराजित किरीट ने अपना मुँह चमेली को सौंप दिया। पराजित योद्धा ने पराजय स्वीकार करने के लिए आँखें मूँदी। किरीट के चेहरे पर चन्द्रिका तारे बरसा रही थी।

४०

ए स्नेह भेखतणी धूणी भिकावो तापी,
प्रीतितणी परम ज्योत महीं भलीशुं।
ललकारशुं प्रीतितणा शुभ वेद मंत्रो,
ने स्नेह-वेदि पर होमशुं सर्व सुख। *

'किरीटकांत एक बात सुनोगे?' मीनाक्षी ने किरीट से पूछा—अमीना का रोजा पूरा हो जाने पर मीनाक्षी उसे साग्रह देखने आई थी।

'हाँ सुनता हूँ। कहो।'

दोनो व्यक्ति हौज पर बैठे थे। हौज का पानी चाँद को, मकबरे को, किरीट और मीनाक्षी को अपने हृदय में समाये हुए था। तूफानी तारे भी आँखें टिमटिमाते हुए पानी में प्रतिबिम्बित हो रहे थे।

हृदय भी संस्कार धारण करनेवाला हौज ही है। प्रसंगों को संचितकर उन्हें प्रतिबिम्बित करनेवाली आरसी! सच! किरीट विचार कर रहा था। उसके विचारों में विघ्न डालती हुई बातचीत मीनाक्षी ने शुरू की।

---

* इस प्रेम योग की धूनी धधका ताप,
प्रीति की परम ज्योति में मिलेंगे।
उच्चारेंगे प्रीति शुभ वेद मन्त्र
औ' प्रेम-वेदि पर होम देंगे सर्व सुख।

'तुम चमेली के साथ विवाह करो तो ?'

जल में कुछ गिरा। जल हिल उठा। चाँद, मक़बरा, किरीट, मीनाक्षी, तारे और आकाश सब एकाकार हो हिल-उछल, एक दूसरे में मिल अदृश्य हो गये।

किरीट पहले कुछ न बोला। पानी हिल रहा था और जब प्रतिबिम्ब उसमें स्थिर होने लगे तब किरीट बोला :

'मैं चमेली के साथ विवाह करूँ तो तुम्हें अच्छा लगेगा ?'

पानी स्थिर हो गया। पानी के हृदय में झाँकते पुतले भी स्थिर हो गये।

मीनाक्षी ने जवाब को बहुत रोका तो भी वह बोल उठी :

'हाँ, अच्छा लगेगा।'

मीनाक्षी ने मुँह बन्द कर दिया : इतनी जोर से कि दाँतों के आपस में टकराने की आवाज़ किरीट ने साफ़ सुनी।

मानवीय असत्यों से परिचित चांद पर एक छोटी बदली आकर निकल गई। म्लानचन्द्र फिर हँसने लगा। मनुष्य के सभी असत्य अवगणना करने जैसे होते नहीं।

किरीट का मन कारण पूछने को हुआ, परन्तु ऐसी क्रूरता उससे हो न सकी। मीनाक्षी से कैसे रहा जाता ? किरीट का विवाह उसे अच्छा लगने का कारण किरीट न जाने तो आजीवन हृदय कसकता न रहे !

'मुझे क्यों अच्छा लगेगा यह नहीं पूछा ?' मीनाक्षी ने पूछा।

'नहीं।'

'पूछो न ! तुम्हारे पाँवों पड़ती हूँ।'

'तुम्हें अच्छा लगे इतना ही मेरे मन में बहुत है।'

'तो तुम विवाह करोगे ?'

'तुम्हें जो कुछ अच्छा लगे वह सब मैं करूँगा।'

हौज़ के पानी में टपाटप कुछ बूँदें गिरीं। पानी पर उन छोटी-सी बूँदों ने वर्तुल-पर-वर्तुल बनाये। एक आँसू सारी सतह पर फैल जाता है।

'ओ किरीट! किरीट! मैं तुम्हें सुखी नहीं कर सकती!'

किरीट चौंका। क्या उसने अकेले ही स्नेह-यज्ञ में आहुति दी थी! मीनाक्षी को सुखी करने के लिए उसने अपना हृदय चीर डाला था, यह सच है; परन्तु किरीट को ही सुखी देखने और किरीट को ही चमेली की ओर प्रेरित करने के लिए मीनाक्षी सर सुरेन्द्र की ओर क्यों न बढ़ी होगी?

उसकी स्पष्ट समझ में आ गया कि उसने अकेले में ही बलिदान नहीं किया था। उसके स्नेह-यज्ञ में मीनाक्षी, चमेली और सुरेन्द्र ने भी हृदय-रक्त की अंजलियाँ दी थीं।

उसने फिर पानी की ओर देखा। चाँद हँसता हुआ सारी सतह को हास्य से उद्वेलित कर रहा था। वह तो हँसता ही, क्योंकि प्रेमियों का यह परम आराध्य प्रेम के प्रथम उद्भव काल से प्रेमियों का पागलपन देखता आया है।

परन्तु चाँद सदा प्रेमियों की दिल्लगी नहीं करता। कितने ही प्रेमी उसे शान्ति से देखने जैसे भी लगते हैं। वह शान्त हो गया। सितारे आँखें टिमटिमाते हुए रुक गये। मक़बरा भी सुडौल बन गया। किरीट और मीनाक्षी की आँखें मक़बरे में से निकलनेवाले एक चन्द्रमुख पर पड़ीं।

हौज़ का पानी भी विचित्र छबियाँ दिखाता है, अन्यथा मक़बरे की परछाईं में से मुख कैसे दिखाई देता!

सब ने मुख को स्थिरता से देखा। परन्तु एकाएक सारा दृश्य उछलकर अदृश्य हो गया। पानी में गुलाब का एक फूल गिर पड़ा। एक फूल भी पानी को हिला देता है।

सबको अपने मुख-प्रतिबिम्ब की ओर ताकते देख, चमेली लज्जित हो गई और उसके हाथ में से गुलाब का एक फूल पानी में गिर पड़ा।

वह कभी से अकेली छोटे से बग़ीचे में, चाँदनी में, फूलों के साथ क्रीड़ा कर रही थी। बहुत देर से हौज़ पर बैठे हुए मीनाक्षी और किरीट को वह समय की याद दिलाने आई, परन्तु सारा संसार उसे एकटक देख रहा था। शर्माकर उसने आँखों पर हाथ रख दिया। फूल आँखों का आलिङ्गन सह न सका और हौज़ के पानी में गिर गया; सम्पूर्ण जल-सृष्टि को हिलाकर हँसता-हँसता, आँखों को चिढ़ाता, लहरों पर नाचने लगा।

मक़बरे में से एक फ़क़ीर गाता हुआ निकला। नसीर अपनी सनम को पुकार रहा था। सारी सृष्टि स्थिर होकर उसी लय को सुनने लगी :

देख तुझे चश्म से बहता य' ख़ून है,
तेरी हिना में उँडेलूँ या ना? सनम!

× × ×

लाज़िम है कुछ नज़र बख़्शी हो तुझे,
गुज़रान का टुकड़ा रहा देना सनम! *

---

* जोई तने चश्मे झरे छे ख़ून ते,
तारी हिनामां रेडवु' या ना? सनम!
× × ×
कोई नजर बक्षी थवी लाजिम तने,
गुजरान नो टुकडो घटे देवो सनम!